गुरुत्तं

भाग-15

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी
आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

कृति : गुरुत्तं भाग-15

मंगलाशीष : श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान : निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, जम्बूस्वामी तपोस्थली बौलखेड़ा, कामॉ, भरतपुर (राजस्थान)

संस्करण : प्रथम सन् 2021

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : स्वाध्याय

प्रकाशन : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

मुद्रक : ईस्टर्न प्रेस
नारायणा, नई दिल्ली-110028
दूरभाषः 011-47705544
ई-मेलः info@easternpress.in

अनुक्रमणिका

1. मनुष्य का सार–वैराग्य 7
2. सिद्ध 16
3. सम्यग्ज्ञान 23
4. किसके बिना क्या नहीं 30
5. आलम्बन से निरालम्बन की ओर 39
6. योगी का कुटुम्ब 47
7. कहाँ किस धन की महत्ता 55
8. धर्म का स्वरूप 62
9. ''पुण्य के तेरह फल'' 71
10. महापुरूष 80
11. पण्डित कौन? 88
12. उत्कृष्ट चार वस्तु 96
13. साधु दर्शन का फल 104
14. बंधन 112
15. सम्यक्त्व के लक्षण 120
16. गुणी और अवगुणी 128
17. कायोत्सर्ग 137
18. करणीय–अकरणीय 146
19. किसे कैसे जीतें 156
20. कब क्या करें? 165
21. भव भ्रमण भंजक 173

पुरोवाक्

सायरोव्व सुदणाणं, तित्थयर–झुणी मेहोव्व मण्णेज्ज।
कूवोव्व साहुवाणी, ताणमभावे उसाभावो ।।483।।

श्रुतज्ञान सागर के समान, तीर्थंकर की ध्वनि मेघ के समान, साधु की वाणी कूप के समान मानी जाती है। उनके अभाव में धर्म का अभाव हो जाता है।

(वचन प्रमाणत्व)
–आचार्य श्री वसुनंदी मुनि

''मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः''

मनुष्य का मन ही बंध व मोक्ष का कारण है। शुभ चिंतन से युक्त मन मोक्ष का कारक है तो अशुभ चिंतन से युक्त मन संसार में कारणभूत है। 'म' अक्षर से 10 चीजें हैं जिन्हें सर्वाधिक चंचल माना गया है। कहा भी है–

मनो मधुकरो मेघो, मानिनी मदनो मरुत्।
मर्कटो मा मदो मत्स्य, मकाराः दसचंचलाः।।

यद्यपि ये दसों ही बहुत चंचल है तथापि चंचलता में मन को सर्वप्रथम ग्रहण किया गया है। मन से ही जीव क्षणभर में तीनों लोकों की यात्रा करने में समर्थ होता है। उजरपुराण में राजा श्वेतवाहन या धर्मरुचि मुनि की कथा उल्लिखित है जहाँ परिणामों की निकृष्टता से नरकायु बंध के योग्य हुए वहीं कुछ समय पश्चात् उसी मन से परिणामों की विशुद्धि से, उत्कृष्ट ध्यान से मोक्ष को प्राप्त किया। ऐसे मन को श्रुत के माध्यम से ही वश में किया जा सकता हैं। स्वाध्याय रूपी उद्यान में रमाकर इस मन को अशुभ में जाने से रोका जा सकता है। आत्मानुशासन ग्रंथ में आचार्य भगवन् श्री गुणभद्र स्वामी ने उल्लिखित किया है–

अनेकान्तात्मार्थप्रसव–फलभारातिविनते,
वचःपर्णाकीर्णे, विपुलनयशाखाशतयुते।
समुत्तंगे सम्यक्प्रततमतिमूले प्रतिदिनं,
श्रुतस्कंधे धीमान् रमयतु मनोमर्कटममुम् ।।170।।

जो अनेकांत स्वरूप पदार्थों के फूल–फलों के भार से नम्र है, वचनों के पत्तों से भरा है, अनेक नयों की शाखाओं से युक्त है, अति उत्तुंग है और जो बहुत विस्तृत मतिज्ञान का मूल है ऐसे इस श्रुत (शास्त्र) रूपी वृक्ष पर मन रूपी बंदर को रमण कराओ।

तीव्र पुण्योदय में ही जिन वचनों को सुनने वा पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त होता है। बुद्धिमान् जन जिनेंद्र वचनों का श्रवण कर ही अपने समय को व्यतीत करते हैं और वही उनके समय व जीवन की सार्थकता भी है। देव, शास्त्र, गुरु प्राणी की विशुद्धि मे निमित्त हैं। गुरु मुख से निसर्गित मधुरकल्याणकारी वचन ही प्रवचन की श्रेणी में आते हैं। जिस प्रकार जल भूमि की मलिनता दूर करने में समर्थ होता है उसी प्रकार गुरु के वचन चित्त की मलिनता को दूर करने वाले होते हैं। व चित्त की शुद्धि होने पर मनुष्य के वचन उसकी क्रियाएँ भी शुभ परिलक्षित होती हैं।

गुरु के निर्देशानुसार स्वाध्याय रूपी राजपथ पर गमन कर मोक्ष रूपी दुर्गम्य दुर्ग में प्रवेश सुख पूर्वक संभव है। गुरु के निर्देश के अभाव में अल्पज्ञता से कदाचित् पथिक समीचीन राजपथ को छोड़ पगदण्डियों में भटककर दुःख अनुभवन हेतु बाध्य हो सकता है। जबकि प्रभु वाणी जब गुरु के शब्दों द्वारा सरलता से हृदयंगम योग्य होती है तो मानव को कल्याण हेतु प्रेरित करती है।

इस पुस्तक के अन्तर्गत योगी का कुटुम्ब, कायोत्सर्ग, गुणी व अवगुणी कब क्या करें? आदि शीर्षकों पर प्रवचनों का समावेश है। ये प्रवचन चित्त संताप को शमन करने के लिये चंदन, आत्म रूप सागर में विशुद्धि रूपी जल के संवर्द्धन के लिये पूर्णिमा के

मृगांक, भव्य के मन रूपी पद्म के विकास हेतु पद्मबंधु, गुणों की सुगंधि भरने हेतु पुष्पोद्यान, तृषित आत्मा पर ज्ञान धारा वर्षण हेतु मेघ के समान हैं।

प्रस्तुति कृति गुरुत्तं भाग–15 परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के मीठे प्रवचनों का संकलन है। गुरुवर की साक्षात् अमृतवाणी के श्रवण से वंचित रहने वाले भव्यजनों तक गुरु की यह कल्याणकारी वाणी पहुँच सके, इस हेतु यहाँ प्रवचनों का संकलन किया गया है। हमारे द्वारा प्रमादवश, अल्पज्ञतावश इस संपादन के कार्य में यत्किंचित् भी त्रुटि रह गई हो तो सुधी पाठक नीर–क्षीर विवेकी हंसवत् गुणग्राहक दृष्टि बनाकर क्षीर रूपी गुणों का अवग्रहण करें और सारहीन नीर का परित्याग। संभव है आपका आनंद, संतोष, हितमार्ग संप्राप्ति एवं कल्याण हमारे परिणामों में विशुद्धि एवं आनंद का निमित्त बन सके।

पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में आर्यिका श्री यशोनंदनी माता जी का श्रम श्लाघनीय है। पुस्तक के मुद्रण प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुओं को पूज्य गुरूवर श्री का मंगलमय शुभाशीष।

गुरूवर श्री का संयमपथ सदैव आलोकित रहे शताधिक वर्षों तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अक्षर शिल्पी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध–श्रुत–आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु.....।।

श्री शुभमिति माघशुक्ल दशमी
श्री वीर निर्वाण संवत् 2547
सोमवार–22/2/2021
श्री जम्बूस्वामी तपो. बौलखेड़ा, कामा, भरतपुर(राज.)

–आर्यिका वर्धस्वनंदिनी

मनुष्य का सार–वैराग्य

महानुभाव! भगवान् महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के उपरांत तीन अनुबद्ध केवली हुये, चार सामान्य केवली, उसके उपरांत श्रुत केवलियों की परम्परा प्रारंभ हुयी जिनमें पाँच श्रुतकेवली हुये। अंतिमश्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी हुये, उसके उपरांत क्षयोपशम और घटता चला गया, श्रुतज्ञान हीनता की ओर गतिशील हुआ 11 अंग 14 पूर्व के स्वामी भद्रबाहु के उपरांत पुनः 11 अंग के ज्ञाता ग्यारह आचार्य हुये। पुनः एक अंग के ज्ञाता आचार्य हुये उसके उपरांत एक अंगांश के ज्ञाता आचार्य धरसेन स्वामी हुये। आचार्य श्री धरसेन स्वामी को जब श्रुत नष्ट होने का विकल्प आया तब उन्होंने महिमा नगरी में आयोजित वेणु नदी के किनारे आचार्य श्री अर्हत्बलि स्वामी के निर्देशन के में होने वाले यति सम्मेलन में से दो मुनिमहाराजों को लाने का संदेश भेजा। उस समय आचार्य भगवान् श्री धरसेन स्वामी गुजरात गिरिनगर ऊर्जयन्त पर्वत के समीप अंकलेश्वर की गुफा में ध्यान साधना में संलग्न अपनी सल्लेखना के समय को व्यतीत कर रहे थे। उनके पास नरवाहन और सुबुद्धि नाम के दो मुनिराज आये। उन्होंने उनकी परीक्षा लेने के उपरांत विद्याध्ययन कराया, उसके बाद दोनों को अलग–अलग दिशा में भेज दिया और स्वयं सल्लेखना की साधना की।

वे दोनों मुनिराज जो पुष्पदंत व भूतबलि नाम से जाने गये, उनमें से आचार्य श्री पुष्पदंत स्वामी ने 'बीसदि सूत्र' अर्थात् सत्प्ररूपणा के 20 अधिकारों की रचना की उसमें लगभग 177 सूत्र हैं। सत्प्ररूपणा अधिकार की रचना श्री पुष्पदंत आचार्य व शेष समस्त ग्रंथ की रचना आचार्य भूतबलि स्वामी ने की इस प्रकार षट्खण्डागम की रचना हुयी, उसके उपरांत गुणधराचार्य ने

'कषायपाहुड़' की रचना की। यह षट्खण्डागम छः भागों में विभाजित था, इसकी टीकायें आचार्य समन्तभद्रस्वामी, कुन्दकुन्दस्वामी, शामकुण्डाचार्य, बप्पदेव आचार्य इत्यादि आचार्यों ने की, किंतु वे टीकायें पाँच खंड पर की, छः खण्ड पर टीका प्रथम बार कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य भगवन् श्री वीरसेन स्वामी ने की। आचार्य वीरसेन स्वामी 9वीं शताब्दी में हुये, सातवीं शताब्दी में जिनसेनाचार्य हुये जिन्होंने हरिवंशपुराण की रचना की। उसके उपरांत अन्य अनेक आचार्य हुये अमितगति आचार्य, अभयचन्द्राचार्य, नेमिचन्द्राचार्य, अजितसेनाचार्य जो 'वादीभसिंह' उपाधि से अलंकृत किये गये।

एक समय सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य भगवन् श्री नेमिचंद्र स्वामी श्री वीरसेनाचार्य द्वारा रचित धवला टीका का अध्ययन कर रहे थे। चामुण्डराय के आते ही उन्होंने उस ग्रंथ को बंद कर दिया। पुनः चामुण्डराय के आग्रह से नेमिचंद्राचार्य ने संग्रहग्रंथ 'जीवकाण्ड' व 'कर्मकाण्ड' की रचना की। अमितगति आचार्य ने उस समय 'पञ्चसंग्रह' नाम के ग्रंथ की रचना की। आचार्य वीरसेन स्वामी ने धवला, जयधवला, महाधवला और विजयधवला टीका नामक रचनाएँ की। विजयधवला नाम की टीका किस ग्रंथ पर लिखी गयी इसकी पूर्ण जानकारी नहीं है किंतु तीन टीका वर्तमान काल में उपलब्ध हैं। षट्खण्डागम की धवला टीका, कषायपाहुड़ की जयधवला टीका और महाबंधो की महाधवला टीका।

आचार्य श्री वीरसेन स्वामी जी ने उस समय बहुत बड़ा कार्य किया। यद्यपि उस समय इतनी भौतिकता तो नहीं थी किन्तु विषमतायें थीं, धर्मोन्माद बहुत था उस समय जिनशासन की प्रभावना करना कठिन था। सभी लोगों को अपना ही मत अतिप्रिय और इष्ट होता था। किंतु दिगम्बर साधु की क्रिया चर्या ही अपने आप में अलौकिक होती है। ''मुनिनां अलौकिकी वृत्तिः''

मुनियों की वृत्ति अलौकिक होती है वे लोक से परे होते हैं, इसलिये जो व्यक्ति रूढ़िवाद से मुक्त होते हैं, शुद्ध विचारशील होते हैं, निष्पक्ष होते हैं, उनमें न्यायप्रियता होती है वे अर्हत्मत के प्रति आकृष्ट होते हैं। उनके मन में अर्हत्मत के प्रति श्रद्धा का आविर्भाव होता है।

आचार्य वीरसेन स्वामी आदि से पूर्व श्रुत का बहुत विध्वंस हुआ, महीनों–महीनों तक शास्त्रों की होली जलती रही। श्रुत का विध्वंस होने पर कई ऐसे आचार्य हुये जिन्होंने श्रुत का संवर्धन किया। पहले श्रुत साहित्य कम लिखा जाता था। आचार्य जिनसेन स्वामी प्रथम–द्वितीय, गुणभद्र स्वामी, वीरसेन स्वामी, अमृतचंद्राचार्य, जयसेन, चामुण्डराय, अजितसेन आदि आचार्य हुये जिन्होंने उस काल में काफी श्रुत संवर्धन किया।

15वीं शताब्दी के आस–पास जब जिनबिम्बों का बहुत खण्डन हुआ, जिन मंदिर बहुत ध्वंस हुये तब एक जैन श्रावक जीवराज पापड़ी वाल आदि श्रावकों ने यथासंभव जिन मंदिरों की जिनबिंबों की स्थापना करायी।

जीवराज पापड़ीवाल के लिये श्रुति में आता है कि एक लाख कहीं आता है दो लाख जिनबिंबों की स्थापना करायी 1548–1553 पाँच वर्ष में प्रतिष्ठायें होती रहीं जो जो मुहूर्त्त निकले उनमे पंचकल्याणक हो–होकर पूरे भारतवर्ष में जितने जिनालय थे वहाँ जिनबिंब प्रतिष्ठा होती रही।

बीच में दिगम्बर साधु कम हुये पुनः श्री शांतिसागराचार्य हुये जिन्होंने मृतप्रायः मुनिपरम्परा को जीवित किया। श्रुतह्रास के पश्चात् आचार्य वीरसेनस्वामी जी आदि आचार्यों ने श्रुतसंवर्धन किया 11वीं शताब्दी में आचार्य श्री सकलकीर्ति जी महाराज हुये। उनका जन्म राजस्थान प्रान्त में (गुजरात बॉर्डर के पास) हुआ।

उस समय साधु पूरे भारतवर्ष में विहार नहीं कर पाते थे, अभी 50–100 वर्ष से ही साधुओं का विहार पूरे भारत वर्ष में संभव हो पाया है। श्रावक भी पहले पूरे भारतवर्ष में विहार करने में समर्थ नहीं था इतने साधान नहीं थे, तो अब तो साधन इतने हो गये हैं कि चाहे तो हर माह, हर हफ्ते भी विदेश तक की यात्रा कर सकता है।

तो आचार्य सकल कीर्ति जी ने भी श्रुत संवर्धन काफी किया। जैसे आचार्य वीरसेन स्वामी 17 वर्ष तक एक ही स्थान चित्रकूट पर रहे, चातुर्मास किये, उसके साथ–साथ उन्होंने अपना संघ भी नहीं बनाया, कुछ साधक उनके साथ में रहे होंगे पर चतुर्विध संघ की स्थापना नहीं की। ऐसे ही आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज ने अपना बड़ा संघ नहीं बनाया, उन्होंने भी राजस्थान प्रान्त में रहकर के लगभग 100–200 कि.मी. के क्षेत्र में ही विहार करते रहे और श्रुत लेखन बहुत किया। षट्खंडागम के छः खंडों की 72,000 श्लोक प्रमाण प्राकृत–संस्कृत मिश्रित धवला नामक टीका आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने की व इसके अतिरिक्त कषाय पाहुड़ की 4 विभक्तियों की 20,000 श्लोक प्रमाण टीका लिखी। इस प्रकार सिद्धांत ग्रंथ की उन्होंने 92,000 श्लोक प्रमाण टीका लिखी। आचार्य वीरसेन स्वामी जी का श्रुत लेखन माना जाता है 92,000 श्लोक प्रमाण तो आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज का श्रुत लेखन माना जाता है लगभग 72,000 श्लोक प्रमाण। उन्होंने काफी ग्रंथ लिखे शांतिनाथ पुराण, धन्य कुमार चरित्र, पार्श्वनाथपुराण, श्री पालचरित्र, सुभाषित रत्नावली आदि। उनका एक ग्रंथ 'सुभाषित रत्नावली' श्रावकों के लिये बहुत उपयोगी है। जैसे अमितगति आचार्य का ग्रंथ सुभाषित रत्न संदोह है, सोमेदेव आचार्य का 'सिंदूर प्रकरण' है, ऐसे ही सकलकीर्ति आचार्य का सुभाषित रत्नावली है।

अपने यहाँ सुभाषित का खजाना है, अनेक आचार्यों ने सुभाषित लिखे। 'सुभाषित' अर्थात् अच्छे बोल। अच्छे वचन जिसमें रीति और नीति दोनों का समन्वय है। उसी समय आचार्य कुलभद्र स्वामी हुये उन्होंने ग्रंथ लिखा सार समुच्चय, इंद्रनदी आचार्य हुये उन्होंने लिखा 'इन्द्रनंदी नीतिसार'। सुभाषित रत्नावली में एक बड़ी मार्मिक बात आचार्य भगवन् ने कही–

वैराग्यसारं भजसर्वकालं निर्ग्रंथ संगं कुरू मुक्तिबीजं।
विमच्य संगं कुजनेषु मित्रं, देवार्चनं त्वं कुरू वीतरागं।।

हे भव्य जीव! तीनों लोकों में यदि कोई सारभूत अवस्था है तो वह वैराग्य है। सर्वकाल उसी को भजो, उसी का सेवन करो। वैराग्य का सेवन करना चेतना के लिये औषधि के समान है। सेवन का आशय मुख से भोजन करना मात्र नहीं है, सेवन व्यक्ति अन्य इन्द्रियों से भी करता है, शरीर से भी करता है। जैसे कहते हैं प्रातःकाल की शुद्ध हवा का सेवन करो, प्रातःकाल सूर्योदय की धूप का सेवन करो। तो सेवन करने से आशय है ग्रहण करना। और उसके माध्यम से अपने शरीर में विद्यमान ग्रंथियां प्रभावित होती हैं उनसे रस स्रावित होते हैं।

वैराग्य का सेवन करने से चेतना में विद्यमान राग–द्वेष की अधिकता कम हो जाती है। वैराग्य रोगों की जड़ को नष्ट कर देता है। वैराग्य के तेजाब से रागद्वेषादि सर्वविकारी भाव जल जाते हैं। जैसे किसी उद्यान में जाकर वृक्षों की जड़ों में तेजाब डाल दिया जाये तो वृक्ष चाहे आम का हो, जामुन का हो या अमरूद आदि किसी का भी हो जड़ों में तेजाब गया, जड़ें जलीं तो वृक्ष भी नष्ट हो जायेगा, ऐसे ही यह वैराग्य का तेजाब विकारों को जलाने वाला है।

वैराग्य रूपी तेजाब इस आत्मा रूपी धातु को शुद्ध करने वाला है, इसमें लगी किट्टकालिमा को दूर करने वाला है। आत्मा

पर जमी हुयी कर्मों की परतें वैराग्य के माध्यम से दूर हो जाती हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ जुगुप्सा, विषयभोग सबंधी विकार आदि सभी कुभाव नष्ट होने लगते हैं, इसलिये वैराग्य का सेवन करना है। वैराग्य ही सारभूत है, वैराग्य ही बीज है, वीतरागता तो पौधा है। दौलतराज जी ने वीतरागता को कहा कि वह तीन लोक में सारभूत है उसे नमस्कार करो।

''तीनभुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप सुखकार नमहुँ त्रियोग सम्हारके।।

वह वीतरागता ही शिवस्वरूप है अर्थात् मोक्षस्वरूप है। इसलिये उस वीतराग विज्ञान को मैं तीन योग से नमस्कार करता हूँ। पर आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज ने कहा वह वीतरागता तो पौधे के समान है और वैराग्य उस पौधे का बीज है, बिना वैराग्य के किसी के जीवन में वीतरागता नहीं आती है। जब भी व्यक्ति कभी वीतरागी बनेगा तो पहले वैरागी होगा। जैसे बिना उपशम और क्षयोपशम सम्यग्दर्शन के क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता ऐसे ही बिना वैरागी के वीतरागता नहीं आती। वैराग्य जीवन को सफल और सार्थक करने वाला तो है ही दुःख, क्लेश, प्रतिकूलता, भय, शोक इत्यादि को भी दूर करने वाला है। वैराग्य के माध्यम से आत्मा चिरंजीवी होती है। जबकि राग द्वेष के माध्यम से आत्मा खंड–खंड जीवन जीती है। वैराग्य के माध्यम से चेतना का परमात्मा की निधि से परिचय होता है, राग द्वेष के माध्यम से दूसरों की संपत्ति देखकर ललचाते रहते हैं। इसलिये वैराग्य बीज है, जिस आत्मा में वैराग्य का बीज आरोपित हो जाता है, उस आत्मा में वीतरागता आती है, उस वैराग्य के बीज से उत्पन्न हुआ वीतरागता का पौधा ही मोक्ष के फल देने वाला होता है। वैराग्य के बीज के बिना वीतरागता का पौधा नहीं बनता और वीतरागता के पौधे के बिना मोक्ष का फल नहीं मिलता।

उस वैराग्य के बीज में श्रद्धा की जलवायु हो, उस वैराग्य के बीज में सम्यग्ज्ञान का स्वाद हो, उसमें संयम रूपी सूर्य का प्रकाश हो। जब वह बीज समर्पण रूपी मिट्टी में गिरता है तब वह नमी पाकर के मृदु होता है तब ही वैराग्य का बीज अंकुरित होता चला जाता है, बढ़ता जाता है, पौधा बनता जाता है, उसमें नव–नव पल्लव, कोपलें आती हैं, पुनः कलियाँ खिलती हैं, पुष्प बनते हैं और वृद्धि होते होते पुष्प झरते हैं व फल आते हैं। फल आना प्रारंभ होता है और पुष्प का झरना प्रारंभ होता है। ये संसार का वैभव भी पुष्प की तरह से है, मोक्ष का फल आना प्रारंभ हुआ तो संसार का वैभव छूटने लगेगा सांसारिक वैभव संसार के कारण भूत कर्मों के छूटने पर मोक्ष का फल प्राप्त होता है।

महानुभाव! इसलिये कहा 'वैराग्य सारं भज सर्वकालं' वैराग्य का सेवन प्रत्येक समय करो। चाहे दिन हो या रात, नीड़ हो या भीड़, सुखमय हो या दुःखमय, किसी भी परिस्थिति में हो वैराग्य का सेवन हर समय किया जा सकता है। जैसे शरीर के जीने के लिये प्राणवायु का सेवन कभी भी किया जा सकता है, कोई भी समय ऐसा नहीं है जिस समय उसे छोड़ दिया जाये ऐसे ही वैराग्य का सेवन आत्महित के लिये सदैव करना चाहिये।

अगली बात कही 'निर्ग्रंथ संगं कुरू मुक्तिबीजं' मुक्ति का बीज यदि संसार में कहीं मिलता है तो निर्ग्रंथ साधुओं की पद रज में प्राप्त होता है, उनकी भक्ति करने से प्राप्त होता है उनकी भक्ति करें तो समझना चाहिए कि मुक्ति प्राप्त करने का मूल्य चुका दिया। निर्ग्रंथ साधुओं की भक्ति किये बिना मोक्ष के बीज को खरीदा नहीं जा सकता। जब निर्ग्रंथ साधुओं की भक्ति की जाती है उसके उपरांत ही वीतरागी भगवान् की भक्ति करना संभव है। यहाँ से भक्ति उमड़ती है तब परमात्मा तक पहुँचती

है। उसके उपरांत वह भक्ति अभेद भक्ति हो जाती है तो आत्मा तक पहुँच जाती है आत्मा को ही परमात्मा बना देती है। चाहे निर्ग्रंथ साधु की भक्ति आज करो या कल या वर्षों बाद चाहे युगों के बाद या भवों के बाद किन्तु जब भी मोक्ष का बीज मिलेगा निर्ग्रंथ साधुओं के माध्यम से ही मिलेगा, सदैव से वहीं से मिला था, मिला है और मिलेगा।

आगे कहा–विमुच्य संगं कुजनेषु मित्रं' खोटे मित्रों की संगति छोड़ो क्योंकि जब तक खोटे को नहीं छोड़ोगे तब तक चोखे को प्राप्त न कर सकोगे खोटे को पकड़कर चोखे को प्राप्त करते हैं तो चोखा भी खोटा हो जाता है। मिट्टी के जिस मटके में दही जमाया जाता है उसी मटके में यदि शुद्ध दूध भर दिया जायेगा तो वह दूध भी खराब हो जायेगा, दही बन जायेगा। खोटे की संगति में जाकर गुण भी दोष बन जाते हैं। इसलिये यह भी ध्यान रखना है कि जीवन में आत्महित चाहिये, मोक्ष का फल चाहिये तो दुर्जनों की संगति छोड़ना जरूरी है। व्यसनी, पापिष्ठ, मोह में लगे हुये भोगासक्त लोगों की मोक्षमार्ग की अपेक्षा से कुसंगति कहलाती है। इनकी संगति छोड़े बिना सुसंगति का लाभ नहीं मिल पाता है सुसंगति के मधुर फल प्राप्त नहीं होते।

अगली बात कही–''देवार्चनं त्वं कुरू वीतरागे'' वीतरागी भगवान् ही सच्चे देव हैं उन्हीं का अर्चन करो, उनका अर्चन करने से ही जीवन में वीतरागता की प्राप्ति होती है, उनकी पूजा भक्ति करने से ही जीवन धन्य, सार्थक और फलीभूत होता है। ये चार बातें आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज ने सुभाषित रत्नावली में लिखीं। इन चार बातों का बार–बार चिन्तन करें तो ऐसा लगता है इनमें चार अनुयोगों का सार भरा पड़ा है, ऐसा लगता है इन चार बातों से हमारे जीवन के चारों पन सफल और सार्थक हो

सकते हैं। ये चार बातें मोक्षमार्ग के चार कदम हैं जिन्हें हमें ग्रहण कर बढ़ना चाहिये, तभी हम चतुर्गति के भ्रमण से मुक्त हो सकते हैं, आप सबका मंगल हो। शुभ हो, कल्याण हो, हम आप सब के प्रति मंगल भावना भाते हैं और इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

सिद्ध

महानुभाव! प्रत्येक भव्य आत्मा का स्वभाव सिद्धत्व को प्राप्त करना है। लोक में सिद्ध शब्द प्रचलन में प्रचुर मात्रा में कर्णगोचर होता है। सिद्ध शब्द का अर्थ यह लगाया जाता है कि उसने अपने अभीष्ट पदार्थ को प्राप्त कर लिया, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया, अपने गन्तव्य तक पहुँच गया। कहता है मैंने अपना कार्य सिद्ध कर लिया। कोई युद्ध के लिये गया युद्ध में विजय प्राप्त की वह सिद्ध हो गया, कोई व्यापार के लिये गया उसे यथेच्छ लाभ हुआ तो कहता है मेरा कार्य सिद्ध हो गया। कृषक अपने खेत में उत्तम फसल प्राप्त करके कहता है मेरा कार्य सिद्ध हो गया, एक विद्यार्थी किसी कम्पटीशन में भाग लेता है और अपनी अपेक्षा के अनुसार अंक प्राप्त करके यथेच्छ Job (जॉब) प्राप्त करता है तो कहता है मेरा कार्य सिद्ध हो गया। अनेकों स्थान पर सिद्ध शब्द का प्रयोग किया जाता है। कोई कहता है ये सिद्ध पुरुष हैं, कोई कहता है ये सिद्ध स्थान है, कोई कहता है इसे सिद्धियाँ हो गयी हैं, कोई कहता है ये सिद्धक्षेत्र या महात्मा दूसरों की सिद्धि में कारण हैं।

तो वास्तव में 'सिद्ध' शब्द का अर्थ क्या है? लोक व्यवहार में व्यवहृत शब्दों के अनुसार सिद्ध शब्द का अर्थ होता है 'अंतिम पडाव'। मंजिल जिसके आगे मार्ग नहीं हो। आत्मा भी सिद्ध अवस्था को प्राप्त करती है। आचार्य महोदय सिद्ध के बारे में कहते हैं–

अट्ठविहकम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।

आचार्य भगवन् श्री कुन्द–कुन्द स्वामी द्वारा प्राकृत में विरचित 'सिद्ध भक्ति' में सिद्धों की विशेषता बताई। कैसे होते हैं

सिद्ध तो बता रहे हैं–'अट्ठविहकम्मवियला' जो आत्मा आठ प्रकार की कर्म प्रकृतियों से रहित हो। कर्मों की आठ ही प्रकृतियाँ हैं ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। ये आठ द्रव्य कर्म हैं। ज्ञानावरणी कर्म का कार्य है ज्ञान गुण को ढांकना। प्रत्येक आत्मा का स्वभाव अनंतज्ञान को प्राप्त करना है उस आत्मा के ज्ञान गुण को ढांकने वाला है ज्ञानावरणी कर्म। दर्शनावरण कर्म का कार्य है दर्शनगुण को ढांकना। प्रत्येक आत्मा का स्वभाव सर्वदर्शी पना है उस सर्वदर्शीपने को जो प्राप्त न होने दे वह दर्शनावरण कर्म है। वेदनीय कर्म का कार्य है इष्ट–अनिष्ट वस्तुओं की सम्प्राप्ति कराना व आत्मा में सुख–दुःख का वेदन कराना।

मोहनीय कर्म का कार्य आत्मा को संसार की वस्तुओं में मोहित करे रखना है। आयु कर्म इस आत्मा को किसी निश्चित शरीर में, निश्चित काल तक रोके रखता है। इस आत्मा के द्वारा प्राप्त किया हुआ छोटा–बड़ा, सुंदर–असुंदर इत्यादि विशेषतायें जो शरीर की हैं वह नाम कर्म के माध्यम से होती हैं। उच्च–नीच कुल में जन्म लेना गोत्र कर्म का कार्य है। अन्तराय कर्म विघ्न डालता है। दान देने में अंतराय डालना दानान्तराय कर्म का कार्य, लाभ प्राप्त होने वाला है उसमें अंतराय लाभान्तराय का काम, भोग में विघ्न भोगान्तराय का कार्य, उपभोग में अंतराय उपभोगान्तराय का काम और शक्ति प्राप्त होने में विघ्न वीर्यान्तराय कर्म का कार्य है। ये आठ कर्म हैं।

प्रत्येक संसारी आत्मा के साथ आठ कर्म अनादि से लगे हुये हैं। ऐसा कोई संसारी जीव नहीं है जिसकी आत्मा में ये आठ कर्म न लगे हों। अनादिकाल से संसारी आत्मायें कर्मों से बद्ध हैं। किन्तु जिस जीव ने इन आठों प्रकार के कर्मों को 'वियल' अर्थात् विकल कर दिया है, अलग कर दिया है, जिसकी आत्मा कर्मों से रहित हो गयी है वही आत्मा सिद्धात्मा है।

आगे कहा–**'सीदीभूदा'** दूसरी विशेषता कही सिद्ध वे हैं जो सीज गये हैं। सीजा हुआ फिर जन्म–मरण नहीं करता। जैसे किसी धान्य को उबाल लिया जाये, गेहूँ, चना, जौ आदि कुछ भी जो उबल गया है उबलकर वह खिल गया, अब उस अनाज को जमीन में बोएँगे तो वह उपजेगा नहीं। ऐसे ही जो आत्मा सीज गयी है, जिसमें से संसार में जन्म–मरण लेने की शक्ति कर्म–नष्ट हो गये हैं, वह आत्मा सीदीभूत है। ऐसी आत्मा सिद्धात्मा कहलाती है। अगली विशेषता कही–**'णिरंजणा'** जो आत्मा अंजन से, कर्मकालिमा से रहित है। एक स्वर्णपाषाण होता है जिस पाषाण में स्वर्ण हो, किन्तु पूरा पाषाण स्वर्ण नहीं है उस पाषाण को अग्नि मे तपाते जाओ–तपाते जाओ बहुत तीव्र ताप पर पत्थर जलकर के राख हो जाता है सोना–सोना रह जाता है। फिर दुबारा तपाओ तो किट्टकालिमा जल जाती है पुनः तीसरी बार, चौथी बार ऐसे 16 बार तपाने से वह पूर्ण पाषाण जल जाता है और शुद्ध सोना रह जाता है। ऐसे ही जिसकी आत्मा निरंजन हो चुकी है कर्म रूपी अंजन के लेप से रहित है, कर्मकालिमा से रहित है वही आत्मा सिद्ध है।

आगे कहा–**'णिच्चा'** अर्थात् आत्मा नित्य है जो कभी नष्ट नहीं होती। संसार की आत्मा का तो जन्म भी होता है और मृत्यु भी होती है। व्यवहार में कहते हैं उनका जन्म हुआ है, पुनः देखो वे मृत्यु को प्राप्त हो गये उनका अंत हो गया, अवसान हो गया। दिवंगत हो गये। किन्तु यह शरीर का अंत होता है एक शरीर का अंत हुआ है सभी शरीरों का नहीं, अभी तो कर्म बाधित और शरीर मिलेंगे। किंतु जिसने समस्त शरीरों का अंत कर दिया जो अब नित्य है, शुद्ध और सिद्ध अवस्था में अनंतकाल तक रहेंगे, कभी भी किंचित् भी अशुद्धि उनमें नहीं आ सकती, वे नित्य हैं उनका परिणमन शाश्वत है। जिसका परिणमन शाश्वत एक जैसा है समझो वह शुद्ध और सिद्ध आत्मा है।

आगे और विशेषता बता रहे हैं कि सिद्ध भगवान् वे हैं जिनकी आत्मा में आठ गुण प्रगट हो गये हैं, जब आठ कर्मों को नष्ट किया तब प्रत्येक कर्म के नष्ट होने पर एक गुण प्रगट हुआ। ज्ञानावरण कर्म को क्षय किया तो आत्मा में अनंतज्ञान प्रगट हो गया, दर्शनावरण कर्म नष्ट किया तो आत्मा में अनंतदर्शन गुण प्रगट हो गया। ज्ञानावरण कर्म का नष्ट होना सर्वज्ञता को देकर जाना, दर्शनावरणी कर्म के नष्ट होने से आत्मा में सर्वदर्शीपना आता है। वेदनीय कर्म के नष्ट होने से आत्मा में अव्याबाध गुण प्रगट होता है, मोहनीय कर्म के नष्ट होने से आत्मा में सम्यक्त्व गुण आता है, अंतराय कर्म के नष्ट होने से सूक्ष्मत्व गुण प्रगट होता है, गोत्रकर्म नष्ट होने से अगुरुलघु गुण प्रगट होता है और आयु कर्म के नष्ट होने से अवगाहनत्व गुण प्रगट होता है। ये आठ गुण जिसकी आत्मा में प्रगट गये वह आत्मा सिद्धात्मा है। जिसकी आत्मा में ये आठ गुण प्रगट नहीं हुये वह आत्मा सिद्धात्मा नहीं है।

पुनः कहते हैं–**'किदकिच्चा'** जो आत्मा कृतकृत्य है वह सिद्ध आत्मा है। कृतकृत्य का आशय क्या है? कृतकृत्य का आशय होता है जो कुछ करने के लायक था वह सब कुछ कर लिया, अब कुछ भी करना शेष नहीं रहा।

भगवान् की मूर्ति देखते हैं वे पद्मासन लगाकर पैर पर पैर रखकर बैठे हैं, हाथ पर हाथ रखकर बैठे हैं वे संकेत कर रहे हैं कि हमें जो कुछ करना था वह सब कर लिया, हमने अपनी आत्मा को आत्मा में लीन कर लिया कृत्यकृत्य हो गये। अभी हम और आप संसारी प्राणी हैं सुख–शांति को प्राप्त करने के लिये कार्य कर रहे हैं। कोई पुण्य कार्य कर रहा है, कोई तपस्या कर रहा है, कोई संयम की साधना कर रहा है, कोई ध्यान लगा रहा है, कोई प्रभु परमात्मा की पूजा–भक्ति कर रहा है सभी किसी न किसी कार्य में संलग्न हैं।

सिद्ध परमेष्ठी सभी कार्यों के परे हैं। इतना ही नहीं शरीर वचन और मन से भी परे है। उनकी आत्मा में किंचित् भी कर्म रज विद्यमान नहीं है। किंचित् भी कर्म विद्यमान रहता है तब तक आत्मा सिद्ध नहीं बन पाती। इसलिये कहा अष्ट गुणों से सहित और कृत्यकृत्य आत्मा, सिद्ध परमात्मा निकलपरमात्मा कहलाती है। निकल अर्थात् जो आत्मा शरीर से रहित हो गयी है वही निकलात्मा–सिद्धात्मा है। आगे कह रहे हैं–**लोयग्गणिवासिणो** लोक के अग्रभाग पर निवास करने वाली आत्मा। यदि किसी तूमड़ी में मिट्टी का लेप कर दिया जाये, उस लेप सहित तूमड़ी को पानी में डाल दें तो तूमड़ी पानी में डूब जाती है। किंतु जैसे ही तूमड़ी पर से मिट्टी का लेप हट जाता है तो वही तूमड़ी जल के ऊपर तैरने लगती है। ऐसे ही संसारी आत्माओं में कर्मों का लेप है, जब कर्मों का लेप हट जाता है तो यह आत्मा लोक के अग्रभाग में पहुँच जाती है।

एक बर्तन में दही रखा है, उसमें पानी डाल दो दही नीचे डूबा हुआ है पुनः मंथानी के माध्यम से दही को मथ लिया जाये, उसमें से निकलने वाला नवनीत का गोला डूबता नहीं है वह ऊपर तैरने लगता है। उस नवनीत में भी कुछ पानी का अंश है इसलिये कुछ डूब रहा है कुछ ऊपर दिख रहा है किन्तु उस नवनीत को गर्म करके शुद्ध घी बना लिया जाये तो उस शुद्ध घी को चाहे छांछ में डालो या दूध में वह डूबता नहीं है ऊपर तैरता रहता है। ऐसे ही सिद्ध वो हैं जो संसार में कभी डूबते नहीं हैं, लोक के अग्रभाग में ऊपर रहते हैं, वहाँ से कभी नीचे नहीं आते।

क्षेत्र की अपेक्षा से वहीं रहते हैं, वैसे तो सभी सिद्ध आत्मा अपनी आत्मा में निवास करते हैं, उनका उपयोग किंचित् समय के लिये भी आत्मा के बाहर नहीं जाता। वे लोकाग्र पर निवास करने वाली शुद्ध आत्मायें ही सिद्ध आत्मायें हैं। वे सिद्धात्मायें

जिन्होंने अपने पुरुषार्थ के माध्यम से तपस्या करके, भक्ति करके, सदकार्यों को करके अपने अशुभकर्मों को नष्ट किया, उसके साथ–साथ शुभ कर्म अपने आप नष्ट हो गये और शुभाशुभ कर्मों से रहित आत्मा सिद्ध बन गयी, सिद्धात्मा सिद्धालय में जाकर विराजमान हो गयी, वह शुद्धात्मा परमशुद्धअवस्था को प्राप्त हो गयी अब वह कभी अशुद्ध नहीं होगी।

महानुभाव! जिस प्रकार जला हुआ बीज बोने पर पुनः उपजता नहीं है ऐसे ही जिसने अपने सर्वकर्मों को जला दिया है ऐसा जीव संसार में जन्म–मरण नहीं करता। जैसे दूध में से निकला घी शुद्ध हो जाता है अब पुनः घी को दूध नहीं बनाया जा सकता, दूध से तो मावा, रबड़ी, पनीर, खीर, दही आदि बनाते हैं ये दूध की बढ़ती हुई पर्यायें हैं। किन्तु अब घी लौटकर के दूध नहीं बन सकता। जैसे एक बालक किशोर होता है, युवा होता है, प्रौढ़ होता है, वृद्ध होता है। वृद्ध होने के उपरांत वह पुनः किशोर नहीं बनेगा पीछे वाली पर्याय पुनः लौटकर नहीं आयेगी अब तो वृद्ध होने के उपरांत मृत्यु ही सन्निकट है। ऐसे ही जो संसार सागर के पार हो गये वे अब इस संसार में लौटकर के नहीं आ सकते, अतीत की पर्यायों को प्राप्त नहीं कर सकते।

महानुभाव! सिद्ध बनना, शुद्ध होना हमारी और आपकी सबकी आत्मा का स्वभाव है, उस स्वभाव को कर्मों ने ढाँककर रख दिया है, अब कर्मों की पर्तों को हटाते चले जायेंगे तो हमारी आत्मा में से सिद्धत्वपना प्रकट होता चला जायेगा। हमारी व आपकी आत्मा सिद्ध बन सकती है, शुद्ध हो सकती है। घबराना नहीं, ये नहीं सोचना कि आप भगवान् नहीं बन सकते हैं, आप भी भगवान् बन सकते हैं किंतु पुरुषार्थ करके भगवान् बनेंगे। भाग्य के भरोसे बैठे रहेंगे तो भगवान् नहीं बनेगें। भगवान् वही बनता है जो पुरुषार्थ करता है, इसीलिये आप पुरुष हैं, पुरुष अपने

प्रयोजन को सिद्ध करें, पुरुषार्थ करें और पुरुषार्थी अपने पुरुषार्थ के माध्यम से अपने कर्मों को नष्ट करने का उपक्रम करता है। धर्म सेवन, अर्थोपार्जन और काम सेवन। किंतु चौथा पुरुषार्थ मोक्षमार्गी बनना है, मोक्ष प्राप्त करना है। संसार में रहकर संसारी प्राणी तीन काम करता है।

मोक्षमार्गी बने बिना सिद्ध नहीं बनते। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के माध्यम से मोक्षमार्ग बनता है इन तीनों से सहित आत्मा मोक्षमार्गी कहलाती है, इन तीनों का फल ही मोक्ष है, निर्वाण है, सिद्ध अवस्था की प्राप्ति है। आप सभी पुण्यात्मा महानुभाव उस मोक्ष को प्राप्त करें, आपके प्रति ऐसी भावना भाते हैं, इन्हीं सदभावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

सम्यग्ज्ञान

संसार में जितने भी प्राणी हैं वे सभी यदि अपने जीवन को सफल और सार्थक कर पा रहे हैं तो उसका एक ही मुख्य कारण है वह है ''सम्यग्ज्ञान''। जिन्होंने अतीत में अपने जीवन को सार्थक किया है वह भी समयग्ज्ञान के कारण ही, भविष्य में भी जो अपने जीवन को सार्थक बना सकेंगे उसका भी एक ही कारण होगा सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञान के बिना मनुष्य का जीवन वैसा ही समझना चाहिये जैसे प्राणों के बिना शरीर, जल के बिना नदी, गंध के बिना पुष्प, रस के बिना कोई फल। ऐसे ही सम्यग्ज्ञान का प्राणी के जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। जिस सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करके व्यक्ति अपने सम्यक्त्व को सुदृढ़ बनाता है, और चारित्र को निर्मल। सम्यग्ज्ञान भक्ति का संवर्धन करने वाला है, वैराग्य को उत्पन्न व बढ़ाने वाला है।

सम्यग्ज्ञान के माध्यम से जीव अपने चित्त को एकाग्र करने में समर्थ होता है। जिसने अपने जीवन में सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर लिया उसने अनेकों भवों की साधना को सार्थक कर लिया। इस मनुष्य जन्म को प्राप्त करके यदि सम्यग्ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाया तब यही समझना चाहिये कि व्यक्ति ने कार्य तो किया परंतु फल नहीं मिला। किसान खेती तो करता है और यदि उसे फसल ही न मिले तो खेती करना व्यर्थ है, विद्यार्थी पढ़े पर विद्यार्जन न करे तो व्यर्थ है, धनार्थी धन तो कमाये पर धन उसके पास न टिके तो व्यर्थ है, ऐसे ही जीवन में सम्यग्ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाया तो सम्पूर्ण कार्य करने के उपरांत भी जीवन ज्यों की त्यों शून्यवत् ही रहता है। नीतिकारों ने लिखा है–

आहार–निद्रा–भय–मैथुनानि, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणां
ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषः ज्ञानेनहीनः पशुभिः समानः।।

आहार, भय, मैथुन व परिग्रह ये चार संज्ञायें जैन दर्शन में मानी गयी हैं। वैदिक परम्परा के ग्रंथों में परिग्रह के स्थान पर निद्रा को स्वीकार किया। संसार के सभी जीव क्षुधा का निवारण करने के लिये भोजन का ग्रहण करते हैं, देवों के कंठ से अमृत झरता है, नारकी मिट्टी आदि खाते हैं, पशु–पक्षी घास आदि चरते हैं जो माँसाहारी हैं वे माँस भक्षण करते हैं, मानव अन्नादि का भोजन ग्रहण करता है। सभी संसारी प्राणी क्षुधा के निवारण के लिये भोजन को ग्रहण करते हैं।

थकान को दूर करने के लिये व्यक्ति निद्रा ग्रहण करता है। और निद्रा लेने के उपरांत उसे स्फूर्ति आती है। प्रायःकर के संसार के सभी प्राणी नींद भी लेते हैं। जब उनके जीवन में ऐसा कोई पदार्थ या दृश्य दृष्टिगोचर होता है, या शब्द श्रवणगोचर होता है जिसके माध्यम से उसे ऐसा अहसास हो कि इसके माध्यम से मेरा अस्तित्व ही नष्ट हो जायेगा या मेरे द्वारा जो उपलब्धि प्राप्त की गयी है वह सब नष्ट हो जायेगी या मेरा धन नष्ट हो जायेगा या मेरी सुख–शांति नष्ट हो जायेगी या सुख–शांति के साधन नष्ट होंगे आदि–आदि बातें जानकर–सोचकर व्यक्ति भयभीत होने लगता है। भय का संचार उसके आत्मप्रदेशों में होने लगता है। भयभीत व्यक्ति निराकुल चेष्टा नहीं कर पाता है, भयभीत व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिये, स्वयं को बचाने के लिये और अपने अपनत्व को बचाने के लिये, अपनी प्रवृत्ति को बचाने के लिये सुरक्षा की खोज करता है। यह प्रवृत्ति प्रायःकर के संसार के सभी जीवों में पायी जाती है।

संसार के सभी प्राणियों में मैथुन संज्ञा भी पायी जाती है। कामदेव का प्रभाव संसार के सभी जीवों पर है, उस कामदेव के बाण से संसारी प्राणियों का चित्त आवेशित है। कामदेव नरक में कोई जीव है तो उसे भी नहीं छोड़ता, स्वर्ग में कोई जीव है

तो उसे भी नहीं छोड़ता, मध्यलोक में जो जीव हैं उन्हें भी नहीं छोड़ता इसलिये संसारी प्राणियों में मिथुन भाव पाया जाता है। वैज्ञानिक लोग तो यहाँ तक स्वीकार करते हैं कि एकेन्द्रिय जीव पेड़ों में भी मैथुन भाव है। शास्त्र भी मानते हैं इसलिये दो वृक्ष पास–पास हों तो दोनों वृक्ष एक दूसरे के समीप आना चाहते हैं, एक दूसरे का आलिंगन करना चाहते हैं। जैसे लताओं में मैथुनभाव अधिक है तो वे लता वृक्ष से लिपटती चली जाती हैं। पेड़ उसे आश्रय देता है।

महानुभाव! ये चार संज्ञायें अनादिकाल से प्रत्येक प्राणी के साथ लगी हुयी हैं। प्रत्येक प्राणी चार संज्ञाओं की पूर्ति में अपने योगत्रय का श्रम करता है। सुबह से लेकर शाम तक, शाम से लेकर सुबह तक संज्ञाओं की पूर्ति में ही लगा रहता है। जैन दर्शन में निद्रा के स्थान पर परिग्रह को लिया है क्योंकि संसारी प्राणी जो कि छद्मस्थ जीव हैं, अज्ञानी जीव हैं वे परिग्रह संचय में संलग्न रहते हैं। कोई भी वस्तु उन्हें अनुकूल दिखाई देती है तो उसे संग्रह करने का भाव उनके मन में आ जाता है। किसी भी वस्तु को देखकर ये भी मिले–वो भी मिले इस प्रकार संग्रह की प्रवृत्ति मन में चलती रहती है यहाँ तक कि ये संग्रह की प्रवृत्ति कीट–पतंगों जंतुओं में भी पायी जाती है। चींटी भी यदि खाद्यान्न मिल जाये तो उसे अपने बिल में इकट्ठा करती चली जाती है। वृक्षों में भी परिग्रह संज्ञा पायी जाती है, जहाँ पर धनादि खजाना हो तो वृक्षों की जड़ें वहाँ तक पहुँच जाती हैं या वह वृक्ष अन्य जो उसकी खाद्यसामग्री है उसको प्राप्त करके संग्रह करता है। जड़ें जल को भी एकत्रित करती हैं क्यों? क्योंकि उसके अंदर भी परिग्रह संज्ञा है। तो ये संज्ञायें सभी प्राणियों में पायी जाती हैं।

नीतिकार आहार, निद्रा, भय व मैथुन इन चार को संज्ञा कहते हैं। ये चार संज्ञायें तो पशुओं और मनुष्यों में सामान्यतः

प्रायःकर समान रूप से पायी जाती हैं। ये चार प्रकार की प्रवृत्ति तो पशु–पक्षी व मनुष्य भी करते हैं। यदि मनुष्य, पशुओं जैसी प्रवृत्ति करता हुआ इन चार संज्ञाओं की पूर्ति करता है इसके आगे नहीं बढ़ता है तो उसका जीवन भी पशु तुल्य ही हो जाता है। यदि मनुष्य और पशुओं में कोई अंतर डाला जा सकता है, तो अंतर डालने का कारण है ''ज्ञानं हि तेषां मधिको विशेषः'' पशु और मनुष्यों में जो अंतर है वह ज्ञान का अंतर है।

मनुष्य कोई भी कार्य करता है वह विवेकपूर्वक करता है, चाहे वह गमन की प्रवृत्ति करे, बोलने की प्रवृत्ति करे, चाहे भोजन करने की प्रवृत्ति करे, चाहे सोने की प्रवृत्ति करे या विषयसेवन की प्रवृत्ति? उसकी प्रवृत्ति में कुछ भिन्नता पायी जाती है। उस मनुष्य में ज्ञान की अधिकता है, ज्ञान की विशेषता है इसीलिये वह अपने को पशु–पक्षियों के कोष्ठ से अलग कर सकता है। उसकी प्रवृत्ति विशेष होगी। उसके आँख, कान, मुख और नासिका एक जैसी होती हैं, पशुओं में भी होती हैं किंतु फिर भी दोनों की प्रवृत्ति अलग–अलग होती है। यहाँ तक कि दो मनुष्यों की प्रवृत्ति में भी अंतर देखा जाता है।

आँख कान मुख नासिका, सबके एक ही ठौर।
कहना सुनना देखना चतुरों का कुछ और।

विवेकी व्यक्ति की प्रवृत्ति कुछ अलग होती है, अविवेकी की प्रवृत्ति कुछ अलग होती है। 'ज्ञान' एक ऐसी वस्तु है जिससे सामान्य और विशेष वस्तु में भेद किया जाता है। जिसके पास सत्य ज्ञान है उसकी प्रवृत्ति सत्य से अनुस्यूत होती है, उसकी दृष्टि निर्मल होती है, उसके वचन–व्यवहार अलग प्रकार के होते हैं, उसका जीवन धर्म से समन्वित होता है। जिसके पास सम्यग्ज्ञान नहीं है, जो मिथ्या ज्ञान से सहित है वह व्यक्ति मिथ्या ज्ञान के कारण जो कुछ भी प्रवृत्ति करता है वह समग्र प्रवृत्ति

संसार संवर्धक ही रहती है। इसीलिये नीतिकारों ने कहा ज्ञान विशेषता को देने वाला होता है।

आचार्य भगवन् कुन्द–कुन्द स्वामी ने भी कहा–**'णाणं णरस्स सारो'** ज्ञान ही मनुष्य का सार है। जिस मनुष्य में ज्ञान–विवेक नहीं है ऐसे मनुष्य का जीवन निःसार है। जैसे दूध का सार घी होता है, फलों का सार उसका रस होता है, पुष्पों का सार उसकी गंध/इत्र होता है ऐसे ही मनुष्यों का सार उनका ज्ञान होता है।

जिस मनुष्य के जीवन में सम्यग्ज्ञान है वह मनुष्य सारभूत है, वह प्राणीमात्र के लिये आधारभूत है, मानवता का उत्थान करने वाला है। जिस मनुष्य के जीवन में ज्ञान नहीं है समझो उसकी प्रवृत्ति पशुओं जैसे चल रही है, उसके माध्यम से कभी मानवता का हित नहीं होता, उसके माध्यम से स्वयं का कल्याण भी नहीं होता, उसके माध्यम से कभी धर्म की उन्नति नहीं होती, उसके माध्यम से पृथ्वी कभी स्वयं को सफल और सार्थक नहीं मानती। ज्ञानहीन मानव को तो पृथ्वी ऐसा मानती है जैसे वह उसके ऊपर भारभूत है। विवेकहीन मनुष्य अभिशाप के समान होते हैं। विवेकवान् मनुष्य जो भक्ति–पूजा क्रियाविधि से सहित होते हैं, सदाचार से युक्त होते हैं ऐसे ज्ञानवान् मानव ही इस लोक के लिये वरदान स्वरूप होते हैं।

महानुभाव! आचार्य कुलभद्र स्वामी जी ने भी इस संबंध में लिखा है–

ज्ञानं नाम महारत्नं येन प्राप्तं कदाचन।
संसारे भ्रमता भीमे, नाना दुःख विधायिनि।।

यदि संसार में सबसे बड़ा कोई रत्न है तो वह ''सम्यग्ज्ञान'' है। उसे जीव जब तक प्राप्त नहीं करता है तब तक वह इस

संसार में परिभ्रमण ही करता रहता है। आज तक संसारी प्राणी ने यह सम्यग्ज्ञान रूपी रत्न प्राप्त नहीं किया इसीलिये अभी तक उसके दुःखों का अंत नहीं हुआ। जिसके पास ज्ञानरूपी अमूल्य रत्न है, उसे तीन लोक की विभूति आज नहीं तो कल प्राप्त हो ही जायेगी। जिसके पास सम्यग्ज्ञान का दिव्य प्रकाश है वह अंधकार में भी ठोकर खा नहीं सकता, जिसके पास सद्शास्त्रों का यथार्थ ज्ञान है वह व्यक्ति अपने जीवन में से पापों को निकालकर के पुण्य का आचरण कर सकता है। जो व्यक्ति सम्यग्ज्ञान से सहित है वह लोक कल्याण करने में समर्थ होता है, जिस व्यक्ति के पास ज्ञान है ऐसा व्यक्ति पशु–पक्षियों का मसीहा बन जाता है, धर्म का प्रवर्तक, युग प्रवर्तक होता है, ऐसा व्यक्ति मानवता का उद्धार करने वाला होता है।

ज्ञान के बिना न किसी का हित हुआ है, न आज होता है न कल हो सकेगा। जब भी कोई प्राणी स्वयं का हित करता है तो ज्ञान के माध्यम से ही कर पाता है यदि दूसरों का हित करने में प्रवृत्त होता है तो भी ज्ञान के माध्यम से प्रवृत्त होता है। ये ज्ञान आत्मा का विशेष गुण है, विशेष लक्षण है और आत्मा का स्वभाव है। वह ज्ञान प्राप्त करने के लिये जो पुरुषार्थ नहीं करते, जो अपने ज्ञान को प्रगट करने के लिये साधना नहीं करते, जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करने के लिये उत्साही नहीं होते वे व्यक्ति पशु तुल्य जीवन जीकर के मनुष्यपर्याय की इतिश्री कर देते हैं।

महानुभाव! इसीलिये कहा–''ज्ञानेनहीनः पशुभिः समानः'' ज्ञानविहीन प्राणी अर्थात् सम्यग्ज्ञान से जो हीन है उनमें और पशुओं में आकृति का अंतर कह लो। मनुष्य की आकृति पशु जैसी नहीं है बस आकृति मात्र से मनुष्य है किंतु प्रकृति पशुओं जैसी है तो आकृति से भले ही मनुष्य बना रहे किंतु जब तक प्रकृति नहीं बदलेगा तब तक वह मनुजता को प्राप्त न कर सकेगा।

मनुजत्व को, मनुष्यत्व को प्राप्त करने के लिये मात्र मनुष्याकार बनना जरूरी नहीं है, जरूरी है मनुजता हमारे अंदर आये, विवेक हमारे अंदर जागे, सदाचार की प्रवृत्ति जागे, हमारा चिंतन मनन और तीनों योग की प्रवृत्ति योग्य हो तभी कहा जा सकता है कि ये मनुष्य है अन्यथा पशुओं जैसा व्यवहार करने वाला, पशुओं की तरह चलने वाला, पशुओं की भांति असंस्कारी भाषा बोलने वाला, पशुओ की तरह से दिन–रात का भेद किये बिना भक्ष्य–अभक्ष्य का भेद किये बिना, उन्हीं की तरह निद्रा लेने वाला पशुओं की तरह काम सेवन करने वाला वह मनुष्य भी मनुष्य के आकार में पशु है। इसलिये आप सभी महानुभाव अपनी आत्मा के हित के बारे में जब भी सोचें तो ये सोचें कि आत्मा का हित कैसे हो। जो आत्मा के हित में संलग्न हैं उन्हीं की संगति के माध्यम से आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है, तत्त्वज्ञान प्राप्त हो सकता है और आत्महित में प्रवृत्ति की जा सकती है।

आप सभी आत्महित में प्रवृत्त होवें, अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिये जागरूक रहें, क्योंकि समय जो बीत जाता है वह पुनः लौटकर के नहीं आता है। इसीलिये हमें अपनी आत्मा का हित अभी करना है, इसी भव में करना है, हमें ही करना है, कोई अन्य व्यक्ति आकर के हमारी आत्मा का कल्याण नहीं करेगा, इसलिये आज से संकल्प ले लें कि हम सम्यग्ज्ञान की ओर अपने कदम बढ़ायेंगे अपने जीवन को पावन बनायेंगे और दूसरों के लिये पवित्रता का निमित्त बनायेंगे। ऐसी मंगल भावना आप सभी के प्रति भाते हुये.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

किसके बिना क्या नहीं

महानुभाव! जीव अपने–अपने कर्म के अनुसार संसार के पदार्थों को प्राप्त कर लेते हैं, जिस प्रकार गाय के बछड़े अपनी–अपनी माँ के पास पहुँच जाते हैं, जिस प्रकार अन्य जानवरों के बच्चे अपनी–अपनी माँ के पास पहुँच जाते हैं हजारों गायों में भी बछड़ा अपनी माँ को पहचान लेता है, ऐसे ही कर्म जिस आत्मा में है उस आत्मा में उदय को प्राप्त होता है और उस कर्म के फलस्वरूप उस व्यक्ति को पुण्यरूप और पाप रूप वस्तु प्राप्त हो जाती है। वस्तु अपने साथ में लेकर चलने की आवश्यकता नहीं है, पुण्यात्मा जीव साथ में पुण्य लेकर के चले पुण्य का फल उसे अपने आप मिल जायेगा। पापी जीव अपने साथ में दुःख लेकर के नहीं चलता वह पाप लेकर के चलता है, जहाँ भी पहुँचता है उसे प्रतिकूलता ही प्रतिकूलता मिलती चली जाती हैं।

जैसे वर्तमान काल में कोई भी व्यक्ति यात्रा करता है तो चेक बुक रखता है या ATM Card साथ में रखता है, credit card के माध्यम से भी जो वस्तु खरीदनी हो खरीद सकता है। पहले ग्रामीण व्यक्ति जाते थे तो अनाज की पोटली बांधकर सिर पर रखकर लेकर जाते थे, बाद में फिर समय आया तो अनाज की पोटली तो बंद हो गयी, रुपया–पैसा लेकर जाने लगा, पहले सिक्के होते थे तो बहुत सारे पैसे बांधकर लेकर जाता था उसके बाद समय आया तो कागज के नोट लेकर जाने लगा, उसके उपरांत चेकबुक लेकर जाने लगा, अब ATM card, Credit card लेकर के all India में कहीं भी जाकर अपनी यथेष्ट वस्तु प्राप्त कर सकता है। आचार्यों ने कहा सुख प्राप्त करने के लिये सुख की सामग्री अपने साथ बांधकर ले जाने की आवश्यकता नहीं है केवल पुण्य को साथ में लेकर के चलो। दुःख की सामग्री अपने

साथ में लेकर बांधकर चलने की आवश्यकता नहीं है पाप तुम्हारी आत्मा में लगा है तो सामग्री की क्या आवश्यकता। आचार्यों ने लिखा है पुण्य और पाप के संबंध में कि किसके बिना क्या संभव नहीं है यह यहाँ बताते हैं–

मोहो ब्रह्म बिना न याति विलयं दुःखं न मित्रैर्विना,
मार्तण्डेन बिना न याति तिमिरं शत्रुर्नभेदं बिना।
संतोषेन बिना न लोभ लहरी रोगो न पथ्यैर्बिना
दारिद्र्यं सकलं न यातिभयदं पुण्यैर्बिना प्राणिनाम्।।

महानुभाव! प्राणियों को किसके बिना क्या प्राप्त नहीं होता ये यहाँ कह रहे हैं–ब्रह्मचर्य के बिना मोह नष्ट नहीं होता, मित्र के बिना दुःख, सूर्य के बिना अधंकार, भेद के बिना शत्रु, संतोष के बिना लोभ परम्परा, पथ्य के बिना रोग और पुण्य के बिना प्राणियों की भयावह संपूर्ण दरिद्रता विलय को प्राप्त नहीं होती। पहली बात कही–मोहो ब्रह्म बिना न याति विलयं'' ब्रह्म स्वरूपी आत्मा को जाने बिना, ब्रह्म स्वरूपी आत्मा का चिंतन किये बिना, ब्रह्म स्वरूपी आत्मा का अनुभव किये बिना मोह जाता नहीं है। जैसे क्रोध घटाने के लिये कहा कि कोई दूसरा समझाये तो क्रोध में कमी आती है।

मांगत–मांगत मान घटे, प्रीत घटे नित–नित घर जाये।
ओछे की संगत बुद्धि घटे, क्रोध घटे मन के समझाये।।

ऐसे ही मोह कब घटता है? जब तत्त्वज्ञानी पुरुष तत्त्वचर्चा करते हैं। उनके बीच में बैठा मूर्ख व्यक्ति भी तत्त्वज्ञान के प्रति यदि जिज्ञासु है, वह ब्रह्मज्ञान की चर्चा सुनता है, आत्मज्ञान की चर्चा सुनता है तो उसे जब भी उस चर्चा में आनंद आने लगे तो समझ लेना वह ब्रह्मज्ञानी बन जायेगा। जिस मछुआरिन को पुष्प में से दुर्गंध आने लगे तो वह पुष्पों की सुगंध ले नही सकती।

किंतु जो व्यक्ति पुष्प खरीदने बाजार में नहीं गया, पुष्प नहीं खरीदे किन्तु पुष्पों की मण्डी के बीच में से निकल जाये तब भी उसकी नासा तृप्त हो जाती है, उसके वस्त्रों में से भी खुशबु आने लगती है, सहज ही प्रभाव पड़ता है, ऐसे ही तत्त्वज्ञान की चर्चा करने से, ब्रह्मज्ञान की चर्चा करने से, समीचीन शास्त्रों का स्वाध्याय करने से साधु संगति करने से, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

जिन्होंने भी ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया है, उन्होंने मोह को बाँधकर नहीं मोह को छोड़कर के किया है। मोह को निर्जीर्ण किया जाता है। शत्रु सबल हो तो उसे जीतने का उपाय कठिन है, शत्रु को पहले कमजोर बनाओ। जैसे योगी श्रेणी पर चढ़ते हैं तो जब क्षपकश्रेणी मांडते हैं तो पहले कर्मों की शक्ति को क्षीण करते हैं और कर्मों की शक्ति जब क्षीण होती है तब कर्मों को बाद में नष्ट भी किया जा सकता है। यदि कोई रस्सी तोड़नी हो तो ऐसे खींचने से टूटती नहीं, रस्सी को अगर पहले कमजोर कर दें तो टूट जाती है। मजबूत धागा भी टूटता नहीं घिसकर के कमजोर कर दो तो टूट जाता है। लकड़ी भी ऐसे टूटती नहीं कुल्हाड़ी से बार–बार तोड़ो तो जब थोड़ी सी रह जाती है तो टूट जाती है। ऐसे ही मोह को तोड़ने के लिये, मोह के बंधनों को तोड़ने के लिये तत्त्वज्ञान का चिंतन करो।

तत्त्वज्ञानी की संगति, शास्त्रों का स्वाध्याय, आँख बंद करके क्षणभर के लिये पूरी दुनिया से अलग पहुँच जाओ अपनी आत्मा की दुनिया में। आचार्य अमृतचन्द स्वामी ने कहा है तुम छः महीने शरीर को पड़ोसी मानकर के व्यवहार करो, इसे आत्मा मत मानो, इसे पड़ोसी मानो और कभी भी चर्चा करो तो स्वयं को first person न मानकर के IIIrd person मानकर चर्चा करो। जैसे आपने कोई काम किया है तो ये मत कहो कि मैंने यह काम किया है, ये कहो कि इस व्यक्ति ने यह काम किया है,

अपना नाम लेकर के कहो कि इसने ऐसा काम किया है अपने आपको भी IIIrd person मानो तो तुम्हें अहसास हो जायेगा कि मैं जो इस नाम का व्यवहार कर रहा हूँ वह इस शरीर के लिये कर रहा हूँ, शरीर सहित आत्मा के लिये कर रहा हूँ आत्मा का कोई नाम नहीं है इसलिये IIIrd person जैसा व्यवहार किया नहीं जा सकता। कभी आत्मा के लिये मध्यम पुरुष जैसा व्यवहार कर सकते हो, आत्मा को समझाओ रे आत्मन्! तू ऐसा क्यों करता है? तू अपने आपको सुधारता क्यों नहीं, तू इन गंदी आदतों को छोड़ता क्यों नहीं, तो इस आत्मा को मध्यम पुरुष बनाकर भी संबोधन दिया जा सकता है और पुनः आत्मा–आत्मा में लीन हो जाये तो आत्मा को उत्तम पुरुष मान लो। अब ये मैं हूँ। सोऽहं नियमसार में आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी ने सोऽहं की तीन गाथाएँ दी। शुद्ध परमात्मा स्वरूप ही मैं हूँ। आचार्य भगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी ने समाधितंत्र में भी कहा है–

''सोहमित्यात्तसंस्कार तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढ संस्काराल्लभते ह्यत्मनि स्थितिं।।28।।

आत्मा की भावना करने वाला, आत्मा में स्थित हो जाता है। 'सोऽहं के जाप का यही मर्म है।

महानुभाव! यहाँ बता रहे हैं–ब्रह्मवलय के बिना अर्थात् आत्मा के आभामंडल के बिना, आत्मा की ब्रह्मज्योति के बिना मोह नहीं जाता है। ब्रह्मज्ञान समझ में आ गया तो समझो मोह चला गया। अगली बात कही–**'दुःखं न मित्रैर्विना'** दुःख मित्रों के बिना जाता नहीं, बैठ जाता है पैर पसार करके। चाहे सुख के कितने भी साधन प्राप्त हो जायें किंतु दुःख ऐसे नहीं जाता। मित्र, आत्मीयसखा, निजी बंधु यदि आकर के चर्चा करता है तो दुःख में भी सुख की अनुभूति हो जाती है। एक व्यक्ति वेदना से तड़प रहा था उसका मित्र अचानक आ गया। मित्र ने कहा

अरे क्या हुआ? ऐसे व्याकुल कैसे होते हो तुम? तुम तो निर्भीक निडर, आत्मशक्तिशाली, आत्मविश्वासी हो ये रोग तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता है। कुछ नहीं, चलो खड़े हो, मैं तुम्हें खड़ा करता हूँ। मित्र ने जब धैर्य, साहस, बल दिया, विश्वास दिया तो वह चलने लगा, भूल गया वेदना को।

एक डॉक्टर रोगी के सामने मुस्कुरा के चर्चा करता है, इससे रोगी का आधा रोग तो वैसे ही दूर हो जाता है। और जो डॉक्टर रोगी से कहे अब आया है उपचार के लिये, मर जायेगा बचेगा नहीं, कितना बड़ा भयंकर रोग है, तो रोगी कहेगा क्षमा करना डॉक्टर साहब, मुझे नहीं पता था आप यमराज के ही सगे भाई हैं जो कामना कर रहे हैं कि मैं मर जाऊँ। मैं तो भगवान् मानकर आपके पास आया।

यहाँ कह रहे हैं कि यदि मित्र सच्चा है तो मित्र को देखते ही मित्र का दुःख दूर भाग जाता है। जब अपनापन होता है तो पहले तो आँखों में आँसू आते हैं जब आँखों से आँसू बह जाते हैं तब उसका दुःख भी बह जाता है। हर किसी के सामने आँखों में आँसू नहीं आते, जहाँ अपनापन दिखाई देता है वहाँ पर जिह्वा से कुछ कह नहीं पाते और आँखों के आँसू थम नहीं पाते। आँसू अपने आपन निःसंकोच सब मन की बात कह देते हैं। आँसू का संबंध बाहर की आँखों से भी है और दिल से भी है। कोई दीवार नहीं है आँखों और हृदय के बीच में जब कभी दर्द होता है तो आँसू निकल ही आते हैं। आँसू अपनों के सामने निकलते हैं, अपनों के लिये निकलते हैं। लोग कहते हैं कि आँसू भी निकलता है अपनी आँखों से तो पराये के लिये। ये तो वे कहते हैं जिन्होंने कभी पराये में अपनापन नहीं देखा। आँसू जब भी निकलता है अपनों के लिये निकलता है। और जब अपने दिल में दर्द होता है तब आँसू निकलता है, दूसरों के दर्द से निकलने वाले आँसू,

जब दूसरों के दर्द को अपना मान लेते हैं तब निकलते हैं अन्यथा संसार में कौन सुखी कौन दुःखी। यहाँ यही कह रहे हैं कि मित्र के बिना दुःख विलय को प्राप्त नहीं होता।

आगे कहा–**'मार्तण्डेन बिना न याति तिमिरं'** सूर्योदय के बिना लोक का तिमिर नष्ट नहीं होता। सैकड़ों हजारों, लक्षाधिक दीप जलाओ, कोट्याधिक दीप जलाओ तब भी संसार का तिमिर दूर नहीं होता और सभी दीप बुझ जायें, लाइट भी चली जाये, चन्द्रमा भी छिप जाये, तारे भी छिप जायें कोई बात नहीं एक अकेले सूर्य का उदय हो जाये तो समस्त अधंकार तिरोहित हो जाता है। प्रखर तेज से युक्त ग्रीष्मकाल के सूर्य का जब उदय होता है तो उसके पहले ही अंधकार को नष्ट कर देता है। उसके आगमन की सूचना पाकर के ही अंधकार ऐसे भाग जाता है जैसे ईमानदार पुरुष को देखकर के चोर भाग जाते हैं। जैसे जिनेन्द्र भगवान् की मुद्रा किसी भक्त के चित्त में उतर जाये तो पाप भाग जाते हैं, जैसे भगवान् का नाम लेते ही दुःख–दरिद्रता भाग जाती है ऐसे ही सूर्य के उदय होते ही अंधकार भाग जाता है, उसके उदय बिना अंधकार जाता नहीं। बाहर के अंधकार को दूर करने के लिये बाहर का सूर्य चाहिये, प्लास्टिक का, धातु का सूर्य बनाकर टांग दो उससे प्रकाश नहीं होता, किसी मानचित्र में सूर्य बना दिया तो अंधकार नहीं भागता, बाहर का अंधकार दूर करने के लिये सही का सूर्य चाहिये। अंतरंग के अंधकार को दूर करने के लिये सम्यक्त्व का सूर्य चाहिये। सम्यक्त्व के सूर्य द्वारा ही अंदर के मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम का अंधकार दूर होता है।

महानुभाव! आगे कह रहे हैं **'शत्रुर्न भेदं बिना'** शत्रु चाहे छोटा हो या बड़ा, शत्रु की एक–एक बात का जो तुम्हें भेद बता दे तो बड़े से बड़े शत्रु को भी धराशायी किया जा सकता

है। रावण त्रिखण्डाधिपति था, बडा बलशाली था, उसके पास चक्र भी था, अनेक प्रकार की विद्यायें भी थी, विद्याधर था, सोने की लंका भी थी, उसकी वह लंका कोट से सुरक्षित थी, किंतु उस समय वन में विचरण करने वाले राम–लक्ष्मण के द्वारा वह रावण पराजित कर दिया गया, रावण को मृत्यु स्वीकार करनी पड़ी। रावण ने पर स्त्री का हरण किया और इस कारण रावण का भाई विभीषण भी उससे दूर चला गया। लोग कहने को तो कह सकते हैं कि रावण इसलिये हार गया कि रावण के साथ रावण का भाई नहीं था, राम इसलिये जीत गये कि राम के साथ उनका भाई था। लेकिन इतनी बात नहीं है, क्यों? क्योंकि रावण के साथ उसका भाई कुंभकर्ण तो था और राम आदि चार भाई में से दो भाई अयोध्या में थे, एक लक्ष्मण ही तो साथ में था, तो एक भाई तो कुंभकर्ण भी रावण के साथ था। रावण हार गया अपनी अनीति के कारण, अपने अधर्म के कारण, अपनी मर्यादा उल्लंघन करने के कारण। जिसने भी मर्यादा का उल्लंघन किया उसे दुःख, आपत्ति, विपत्ति, संकट प्राप्त होते ही होते हैं।

वैदिक परम्परा में आता है कि राम के मन में स्वर्णमृग देखकर के लोभ आया, सीता ने कहा देखो यह स्वर्णमृग है मैं इसके साथ खेलूँगी आप इसे ले आओ। श्री राम लोभ से गये, सीता के मन में लोभ आया सीता का अपहरण हुआ और राम दुःखी हुये। तो जो भी मर्यादा का उल्लंघन करेगा उसे दुःख का सामना करना ही पड़ेगा। श्री राम जो अहिंसावादी, सत्यवादी, आदर्शोत्तम, मर्यादा पुरुष थे उन्होंने भी यदि मर्यादा का उल्लंघन किया तो दुःखों को प्राप्त करना पड़ा। रावण इसलिये हारा कि उसने मर्यादा का उल्लंघन किया। श्री राम इसीलिये जीते कि उन्होंने मर्यादा का पालन किया।

भाई के साथ रहने छोड़ने की बात कहो तो कौरव तो सौ भाई थे, कोई भाई छोड़कर नहीं गया, सभी साथ में रहे, फिर भी

कौरव क्यों हार गये? और भाई के छोड़ने की बात कहो तो युद्ध से पहले ही श्रीकृष्ण ने कर्ण को बता दिया था कि तुम कुन्ती के पुत्र हो, पाँच पाण्डव तुम्हारे भाई हैं। वहाँ से इधर आ जाओ, किंतु पाण्डव फिर भी जीत गये। जब कौरव 100 भाई एक साथ रहे और पाण्डवों का एक भाई भी उनके साथ में आ गया तो भी कौरव कैसे हार गये। क्यों? क्योंकि कौरव अनीति के साथ थे। जब व्यक्ति अनीति के साथ होता है, अधर्म के साथ होता है, असत्य के साथ होता है तो पराजित होता ही होता है। धर्म कभी पराजित नहीं होता। और जिसकी आत्मा में धर्म है ऐसा धर्मात्मा भी पराजित नहीं होता है। यहाँ कहा–'शत्रुर्न भेदं बिना' शत्रु का भेद मिल जाये तो शत्रु को पराजित किया जा सकता है।

आगे कहा–**''संतोषेन बिना न लोभलहरी''** चित्त में लोभ की लहर उठ रही है उसे शांत करने के लिये संतोष आवश्यक है। जब भगोने में दूध उबल रहा हो तो शीतल जल के छीटें डाल दो उससे वह शांत हो जाता है। ऐसे ही लोभ की लहर उठ रही हो तो संतोष जल के छीटें मारो वह शांत हो जाता है। लोभ की अग्नि को शांत करने का एक ही उपाय है वह है संतोष।

'रोगो न पथ्यैर्बिना' जब तक पथ्य का सेवन नहीं किया जाये कितनी भी औषधि खाओ तब तक रोग जाता नहीं है। चाहे डॉक्टर बदलते रहो, चाहे औषधि बदलते रहो किंतु जब तक जो वस्तु आपके लिये हानिकारक है उसका त्याग न करोगे तब तक रोग से मुक्ति नहीं मिलेगी। पथ्य के बिना रोग नहीं जाता।

'दारिद्र्यं सकलं न याति भयदं' दरिद्रता और भय तब तक नहीं जाता जब तक प्राणियों के जीवन में पुण्य का उदय नहीं आता। पाप के उदय से अपने घर में भी व्यक्ति भयभीत रहता है, रोता है। अपने अंगरक्षकों के बीच में भी कांप रहा है, कहीं ये अंगरक्षक मेरे भक्षक न बन जायें। अपने राज्य में भी

व्यक्ति अपने ही गुप्त शत्रुओं से भयभीत है। घर में षड़यंत्र चल रहा है, माँ भी उसमें शामिल, भाई–मित्र सब शामिल हैं जब घर के व्यक्ति ही षड़यंत्र रचें तो कौन व्यक्ति उसे बचा सकता है। पाप के उदय में अपने आत्मीयजन भी शत्रु हो जाते हैं। जब अपने ही शत्रु होने लगें तब तो अपनी आँख खोलकर के देख लो कि अब तुम्हारे पाप कर्म का उदय आ गया, अब कम से कम पुण्य की शरण को प्राप्त कर लो। यहाँ कह रहे हैं पुण्य के बिना प्राणियों, को सुख–शांति नहीं मिलती वह निडर नहीं हो पाता, निर्भयता नहीं मिलती और समृद्धि की प्राप्ति नहीं होती।

महानुभाव! इसीलिये आचार्यों ने कहा कि ये सब चीजें जीवन में बहुत आवश्यक हैं। तो बह्मज्ञान मोह नष्ट करने के लिये, मित्र दुःखों को नष्ट करने के लिये, सूर्य अंधकार को नष्ट करने के लिये, भेद ज्ञान शत्रु को नष्ट करने के लिये, संतोष लोभ को नष्ट करने के लिये, पथ्य सेवन रोग को नष्ट करने के लिये और पुण्य सम्पूर्ण द्ररिद्रता दुःख, भय, आपत्ति, विपत्ति को दूर करने के लिये अत्यंत आवश्यक है। इसके बिना इष्ट कार्य की सिद्धि नहीं होती। आप सभी लोग इष्ट कार्यों का संपादन करें, ऐसी हम आपके प्रति मंगल भावना रखते हैं। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

आलम्बन से निरालम्बन की ओर

आत्म कल्याण के लिये तीर्थंकर भगवंतों ने, सर्वज्ञ, केवली जिनदेवों ने दो प्रकार का मार्ग कहा। एक प्रत्यक्षमार्ग दूसरा परोक्षमार्ग। प्रत्यक्षमार्ग बड़ा कठिन है, दुरूह है, दुर्गम है हर व्यक्ति उससे जाने में समर्थ नहीं। प्रत्यक्ष मार्ग आकाश के मार्ग के जैसा है हर व्यक्ति की उस आकाश में उड़ने की सामर्थ्य नहीं होती। इसके लिये विद्या चाहिये या ऋद्धि चाहिये। बिना विद्या या ऋद्धि के मानव आकाश में गमन नहीं कर सकता और जो परोक्षमार्ग है तो समझो थोड़ा सरल मार्ग है, वह स्थल पर गमन करने की तरह से है। जो प्रत्यक्षमार्ग पर चलने में समर्थ हैं वे प्रत्यक्षमार्ग में तो तीव्र गति करते हैं कभी थक जाते हैं तो उनकी गति थोड़ी सी कम हो जाती है तब मानो वे जलीयमार्ग में चलने लगे हैं।

मोक्षमार्ग में दो प्रकार की अवस्था देखी जाती है प्रवृत्ति रूप व्यवहार मोक्षमार्ग, निवृत्ति रूप निश्चय मोक्षमार्ग। निश्चय रूप जो प्रवृत्ति होती है वह आत्मा में आत्मलीन रूप होती है निश्चय सम्यग्दर्श निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय सम्यक्चारित्र रूप होती है जिसमें एक पदार्थ का तत्त्व का आलम्बन लेकर पुनः निरालम्ब व निर्विकल्प हुआ जा सकता है। किन्तु दूसरा जो मार्ग है वह है व्यवहार मार्ग जिसमें अवलम्बन की आवश्यकता होती है। आकाश में चलने वाले, ऋद्धिधारी मुनिराज के लिये किसी विमान या वाहन की आवश्यकता नहीं। जमीन पर चलने वाले व्यक्ति के लिये अल्प समय में अधिक दूरी तय करने के लिए वाहन की आवश्यकता होती है अथवा वह धीरे–धीरे पैदल भी चल सकता है। जमीन पर चलने वाले व्यक्ति को जल गमन के लिए नाव की आवश्यकता होती है वह तैर भी सकता है किन्तु तैरने वाले व्यक्ति की नाव में या आकाश में चलने वाले व्यक्ति से अधिक गति नहीं हो सकती। आकाश में चलने वाले वाहन द्रुतगति से

शीघ्र ही हजारों मील की दूरी तय कर लेते हैं किन्तु स्थल पर चलने वाले यान इतनी तीव्र गति से नहीं चल सकते। और जल में चलने वाली नौका या जहाज जल में सीधे चले जाते हैं जो स्थल पर चलने वाले वाहनों से कई बार पहले पहुँच जाते हैं। मुख्यता से जलीय मार्ग छोटा होता है स्थल मार्ग में बहुत घूम कर आना पड़ता है।

महानुभाव! जब आलम्बन सम्यक् हो तब निःसंदेह सम्यक्मार्ग पर गमन करना सुगम होता है। अब आप कहेंगे सम्यक् आलम्बन कौन सा होता है। सम्यक् आलम्बन आपके लिये वही है जिसके माध्यम से आपका समत्व भाव जाग्रत रहे, सम्यक् आलम्बन वही है जिसके माध्यम से आपका सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र शुद्ध निर्मल और जागरूक रहे और आप उनके प्रति जागरूक रहे। जिस आलम्बन को लेकर के आपके चित्त में निर्मलता न आये, संक्लेशता का ह्रास न हो वह आलम्बन आपके लिये सम्यक् नहीं है। जिस व्यक्ति को देखकर आपकी कषायें वृद्धि को प्राप्त हो जायें उसे हम सम्यक् आलम्बन कैसे कह सकते हैं। सम्यक् आलम्बन वह है जिसके माध्यम से आपका समीचीनपना स्थिरता को प्राप्त हो, विशुद्धि वृद्धि को प्राप्त हो।

चौथे गुणस्थान में आलम्बन देव–शास्त्र–गुरु हैं, चौथे गुणस्थान वाला सम्यक्मार्ग पर गमन करने के लिये उत्सुक है, मोक्ष मार्ग पर गमन करने के लिये तत्पर है, बहुत उत्साह के साथ जाना चाहता है किन्तु अभी एक भी कदम नहीं बढ़ाया। तैयारी पूरी कर रहा है कि मैं ऐसे चलूँगा–ऐसे चलूँगा किन्तु कदम नहीं बढ़ाया इसलिये आचार्यों ने शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है, यह जिनेन्द्र भगवान् की वाणी है कि चौथे गुणस्थान वाला मोक्षमार्गी नहीं है। जो व्यक्ति चौथे गुणस्थान वाले व्यक्ति को मोक्षमार्गी मानते हैं वे जिनाज्ञा से बाहर हैं, जिनागम, जिनदर्शन से बाहर हैं। चौथे

गुणस्थान का नाम है अविरत सम्यग्दृष्टि या असंयत सम्यग्दृष्टि। गोम्मटसार जीवकांड में कहा है–

चारित्तं णत्थि जदो अविरद अंतेसु ठाणेसु।।12।।

चौथे गुणस्थान में व्रत–संयम–चारित्र नहीं है और बिना चारित्र के मोक्ष मार्ग बनता नहीं है। तीन तत्त्वों में से दो तत्व आ गये तो मोक्षमार्ग नहीं बनेगा। नींबू, शक्कर और पानी मिलकर ही शिकंजी बनेगी सिर्फ दो चीजों से शिकंजी नहीं बनती। यदि जल और शक्कर है तो शर्बत बन सकता है, नींबू जल है तो खट्टा पानी बन सकता है। शक्कर–नींबू है तब भी शिकंजी तो नहीं बन सकती तीनों चीजें ही चाहिये। ऐसे ही मोक्षमार्ग में तीनों रत्नों की आवश्यकता है। दो रत्नों को प्राप्त करके व्यक्ति मोक्षमार्ग का जिज्ञासु बन सकता है, मोक्षार्थी बन सकता है किन्तु मोक्षमार्गी नहीं।

पंचम गुणस्थान वाला व्यक्ति मोक्षमार्ग में चलने के लिये कदम बढ़ा रहा है। चौथे वाला तो मात्र खड़ा ही था, जिस ओर चलना है उस ओर देख रहा था।

छटवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज की साधना आलंबन सहित होती है किंतु सप्तम या उसके आगे गुणस्थानवर्ती मुनिराज की साधना निरावलंब होती है। चौथे गुणस्थान वाले सद्गृहस्थ के लिए पंचम गुणस्थान वाले व्रती श्रावक कि लिए और छटवें गुणस्थान वाले मुनिमहाराज के लिए भी आलंबन आवश्यक है। उनका धर्म ध्यान बिना आलम्बन के नहीं बनता इसलिये छटवें गुणस्थान वाले मुनिमहाराज प्रतिक्रमण भी करते हैं, स्वाध्याय भी करते हैं, प्रत्याख्यान भी करते हैं, देववंदना, गुरुवंदना, स्तुति आदि भी करते हैं, वे तत्त्वचिंतन भी करते हैं, जाप लगाते हैं, उपदेश भी देते हैं किन्तु सप्तम गुणस्थान वाले मुनिराज इन सभी विकल्पों से दूर होकर के आत्मा में निमग्न रहते हैं।

महानुभाव! अब जो निर्विकल्प ध्यानी मुनि महाराज हैं वे निर्विकल्प ध्यान में यदि संलग्न हैं तो उनकी कर्मनिर्जरा ज्यादा है। यदि वे अपने मन में विकल्प ले आयें कि मुझे प्रतिक्रमण करना है, स्वाध्याय, स्तुति, वंदना, प्रत्याख्यान आदि करना है। वे विकल्प लेकर के यदि क्रिया करते हैं और निर्विकल्प ध्यान से उतरकर आते हैं तो आचार्य भगवन! श्री कुंदकुंद स्वामी जी ने समयसार के मोक्षाधिकार में लिखा है कि उनके लिए वह सब कुछ विषयकुंभ के समान है और ध्यान में लींन रहना उनके लिए अमृत कुंभ है।

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरहा सोही, अट्ठविहो होइ विसकुंभो।।306।।
अप्पडिकमणं अप्पडिसरणं अप्परिहारो अवधारणा चेव।
अणियत्ती य अणिंदागरहासोही अमियकुंभो।।307।।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी जी ने समयसार में लिखा है कि उनके लिये वह सब कुछ विषकुंभ के समान है। और ध्यान में लीन रहना उनके लिये अमृतकुंभ है।

जो मुनिराज षष्टम गुणस्थान में प्रमत्त दशा में हैं वे यदि प्रतिक्रमणादि करते हैं तो वह उनके लिये अमृतकुंभ के समान है। प्रतिक्रमण, स्तुति वंदना, स्वाध्याय, उपदेश, जाप, प्रयाख्यान, वाचना, प्रवचन आदि सब अमृतकुण्ड के समान है। छटवें गुणस्थान वाले मुनिराज इन धर्मनिमित्तों का आलम्बन लेते हैं। पंचम गुणस्थान वाला भी धर्म के निमित्तों का आलम्बन लेता है, मंदिर में जाता है पूजा–अभिषेक करता है, स्वाध्याय–जाप करता है, आहारादि दान देता है, तीर्थ यात्रा करता है, सेवा वैय्यावृत्ति करता है, साधुओं का विहार कराता है, बड़े–बड़े धर्म के अनुष्ठान करता है, मंदिर बनवाता है, मूर्ति विराजमान कराता है, प्रतिष्ठायें सम्पन्न कराता है ये श्रावक के लिये धर्म के आलम्बन हैं।

इन आलंबनों के बिना वह धर्म में स्थिर नहीं रह पाता इनके बिना वह अपने चित्त को धर्म में स्थिर करने में असमर्थ होता है। जैसे कोई व्यक्ति अपनी गाड़ी को रोकना चाहे तो या तो ब्रेक लगा दे और जिस गाड़ी में ब्रेक नहीं है, stand पर खड़ी नहीं हो सकती है तो गाड़ी तो लुड़क कर नीचे चली जायेगी अतः वह पहिये के नीचे पत्थर की ओट लगा देता है, जिससे गाड़ी नीचे ढलान की ओर न जाये, कुछ न कुछ सहारा चाहिये। ऐसे ही व्यवहार मोक्षमार्गी का चित्त भी अनादिकाल के संस्कार वशीभूत होने से पुनः–पुनः आर्त्तध्यान में चला जाता है, पुनः–पुनः मन रौद्र ध्यान में चला जाता है, पुनः–पुनः मन पाप से संश्लिष्ट हो जाता है उसके लिये सम्यक् आलम्बन चाहिये।

मुनिमहाराज भी आलम्बन लेते हैं, त्याग तपस्या करते हैं, कभी अन्न का त्याग, कभी ऊनोदर, कभी नीरस तो कभी उपवास कर लेते हैं। धन्य हैं वे तपस्वी मुनिराज जो ऐसी साधना करते हैं, धन्य हैं वे मुनिराज जो चित्त की विशुद्धि हेतु खड़गासन से, पद्मासन या अन्य कठिन–कठिन आसनों से सामायिक करते हैं। कई बार तो मुनिराजों को ग्रंथ कंठस्थ करते देखा, वे शंका समाधान कर रहे हैं, क्योंकि उनके लिये वह आलम्बन है विषयकषाय वंचनार्थ, सकलकर्मक्षयार्थ, अशुभनिवृत्यिापर्थ। और श्रावक तो बिना आलम्बन के धर्मध्यान कर ही नहीं सकता। आचार्य देवसेन स्वामी जी आदि आचार्यों ने लिखा है कि श्रावकों के जीवन में निरालम्ब धर्म ध्यान नहीं होता। आचार्य शुभचंद्रस्वामी जी ने भी लिखा–

खपुष्पमथवाश्रृंग खरस्यापि प्रतीयते।
न पुनर्कालदेशोऽपि ध्यानसिद्धि गृहाश्रमे।।

आकाश में फूल नहीं खिलते, फूल तो पौधे पर लगते हैं अथवा, गधे के सिर पर सींग नहीं होते किंतु कह रहे हैं किसी

काल, देश में माना कभी सिद्धि हो भी जाये कि गधे के सींग, आकाश में फूल मान लिये जायें किंतु गृहस्थ जीवन में तो कभी निरालम्ब ध्यान की सिद्धि होती ही नहीं। देवसेन स्वामी जी ने तो कहा है कि गृहस्थ का ध्यान तो ढेंकुली जैसा है। ढेंकुली जैसा ध्यान कैसे? वह ओखली में मूसल से धान कूटता है किन्तु धान का स्वाद नहीं लेता, बस कूटता ही रहता है। ऐसे ही गृहस्थ, गृहस्थ कार्य में, व्यापार में लगा रहता है ध्यान करने बैठता है तो गृहस्थ जीवन के व्यापार उसके चित्त में आने लगते हैं। इसलिये उसे धर्मध्यान का आलम्बन चाहिये बिना उसके तो वह आर्त्त–रौद्र ध्यान में गिर जाता है।

जैसे वृद्ध पुरुष लाठी के बिना चल नहीं पाते, गिर जाते हैं वह लाठी उनके लिये आलम्बन होती है, विकलांग के लिये बैसाखी का आलम्बन होता है या दुर्बल पुरुष जब सीढ़ी चढ़ता है तो दोनों तरफ रेलिंग होती है उसे पकड़कर चलते हैं तो वे गिरते नहीं। जो युवा सबल है उन्हें रेलिंग की आवश्यकता नहीं है। अप्रमत्त आदि गुणस्थान में निवास करने वाले मुनिराज वे सभी सबल हैं, युवा हैं उन्हें आलम्बन की आवश्यकता नहीं है वे अपने आप में निरालम्ब ध्यान कर सकते हैं किंतु 5वें–6वें गुणस्थान में आलम्बन परम आवश्यक है।

महानुभाव! गृहस्थों के लिये आलम्बन है देव–शास्त्र–गुरु, पंचपरमेष्ठी, उनके जिनालय व बिम्ब और इनकी वाणी। इनके क्षेत्र, नवदेवता आदि सम्यक् आलम्बन हैं। प्रमत्त साधु के लिये भी इन सभी आलम्बनों की आवश्यकता होती है। अप्रमत्त आदि गुणस्थान में जब पहुँच गये तो आलम्बन की आवश्यकता ही नहीं। अब जब साधु जंगल में साधना कर रहे हैं। तब यदि उनको कोई भगवान् नहीं मिले, दर्शन के लिये मंदिर नहीं मिला, स्वाध्याय के लिये शास्त्र नहीं मिला, गुरुमहाराज का उपदेश नहीं मिला तो क्या करें? तो कह रहे हैं जो योगी अपने चित्त को

एकाग्र करने में समर्थ होता है तो उसके संसार में आलम्बनों की आवश्यकता नहीं और आलम्बनों की कमी भी नहीं है। आचार्य वीरसेन स्वामी जी ने धवला जी वर्गणाखण्ड में स्वयं लिखा है–

आलम्बणेहि भरिदो लोगो झायदि मणस्स खवगस्स।
जं जं मणसा पेच्छमि तं तं आलम्बणं च होदि।

यह पूरा लोक आलम्बनों से भरा पड़ा है, यदि क्षपक कर्मों को क्षय करने के लिये उत्सुक व विशुद्ध कर लें तो वे मुनिराज संसार के किसी भी पदार्थ को देखकर धर्म ध्यान कर सकते हैं। प्रकृति आलम्बनों से युक्त है। कोई भी प्राकृतिक आलम्बन ले लें, चाहे आकाश को देखें तो ध्यान लगा लें, सरोवर को देखें या झील को, नदी, पर्वत, वृक्ष, हवा, अग्नि, पृथ्वी को देखें, कभी भी, किसी का भी चिंतन करें उन्हें आलंबनों की कमी नहीं। वे संसारी प्राणियों को देखकर भी अपना चित्त विशुद्ध कर सकते हैं। कोई संसारी प्राणी अज्ञान के कारण भोगों की कीचड़ में पड़े हैं, पाप कर रहे हैं, कषाय के आवेश से जल रहे हैं वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। तो उनका आलम्बन लेकर भी अपना चित्त विशुद्ध किया जा सकता है उन्हें देखकर भी आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय व संस्थान विचय धर्म ध्यान किये जा सकते हैं। जीव विचय, अजीवविचय, लोकविचय, विरागविचय इत्यादि ध्यान का चिंतन किया जा सकता है।

कहने का आशय यही है कि यह लोक आलम्बनों से भरा है, कर्मों को क्षय करने वाले योगी के मन के लिये वह ध्यान है। जो ध्याता है उसके लिये कहीं भी आलंबनों की कमी नहीं। वह बहाने न करे मैं जंगल में बैठा था, क्या करता मंदिर नहीं जा पाया, मैं क्या करता इन श्रावकों के बीच फंस गया, मैं क्या करता इन उपसर्ग करने वाले दुष्टों के बीच में फंस गया। सत्यता तो यह है कि कभी भी किसी भी परिस्थिति में धर्म ध्यान

किया जा सकता है। ''सव्वत्थ सुंदरो लोए'' लोक सर्वत्र सुंदर है। सब अपनी आत्मा को सुंदर बनाने के लिये है। ''जं जं मणसा पेच्छमि'' जब–जब मैं मन के द्वारा संसार के पदार्थों को देखता हूँ, निर्मल चित्त से देखता हूँ तं तं आलंबणं च होदि' तब–तब वह–वह पदार्थ चित्त का शोधन करने के लिये। मेरे लिये आलंबन बन जाता है यदि मैं चित्त का शोधन करना चाहता हूँ तो चित्त का शोधन कैसे भी किया जा सकता है।

कोई कुशल व्यक्ति जिसे सफाई करनी हो और झाड़ू नहीं है तो वह लकड़ी को उठाकर के ही कचरे को अलग कर सकता है कपड़े से या अन्य किसी भी माध्यम से सफाई कर सकता है उसके अंदर वह कला हो तो। जिस महिला को घर साफ ही नहीं करना हो तो भले ही घर में कितने ही सफाई के यंत्र रखे हों वह साफ नहीं करेगी। यदि हमें अपना चित्त शुद्ध करना है तो किसी भी निमित्त से शुद्ध कर सकते हैं। हाँ अगर चित्त शुद्ध करना ही नहीं है तो भगवान् के समक्ष पहुँचकर भी चित्त शुद्ध नहीं कर सकता। इसलिये साधु को चाहिये कि वह अपने जीवन को निमित्ताधीन नहीं बनाये, अपने जीवन को स्वाधीन बनाये। पुनः जब–जब भी शुभ निमित्त मिलता है तो उससे अपने चित्त को शुद्ध करें, अपने आप चित्त को शुद्ध करना सीखें। स्वयं दूसरों के लिये शुभ और शुद्ध के निमित्त बनें। अब तुम्हें निमित्तों की आवश्यकता नहीं, दूसरों के लिये निमित्त बनने की आवश्यकता है। तुम स्वयं अपना कल्याण तो कर ही रहे हो, अब दूसरों के कल्याण में भी निमित्त बनो। आप सभी सद्गृहस्थ सम्यक् आलम्बनों को ग्रहण करके अपनी आत्मा का हित कर सको ऐसी आप सभी के प्रति मंगल भावना भाते हैं, इन्हीं सदभावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

योगी का कुटुम्ब

संसार में प्रायःकर के सभी प्राणी भयभीत, दुःखी, अशांत और खेद से युक्त दिखाई देते हैं। इसका मुख्य कारण है परिग्रह और परिचय। परिचय होने से राग की वृद्धि होती है, परिग्रह होने से उसके बाधकों के प्रति द्वेष की वृद्धि होती है। परिग्रह अनुकूल है तो राग, परिग्रह में कोई प्रतिकूल चीज आ गयी तो द्वेष बन जाता है। राग–द्वेष से रहित आत्मा ही निर्भय अवस्था को प्राप्त करती है। जब तक आत्मा राग–द्वेष से सहित होती है तब तक उसके किसी न किसी प्रकार का भय रहता है। किसी को मृत्यु का भय, किसी को अपयश का भय, किसी को रोग हो जाने का भय, किसी को वृद्ध हो जाने का भय, किसी को कुल में कलंक लग जाने का भय, किसी को पुत्रादि इष्टजनों के वियोग का भय, किसी को धन नष्ट होने का भय, किसी को यदि और कोई भय नहीं है तो उसे ये ही भय लगता है कि मैं कैसी मृत्यु प्राप्त करूँगा क्या मेरी समाधि होगी। अथवा कोई सोचता है मेरे जीवन में पाप कर्म का उदय नहीं आ जाये, अथवा कोई बाधा पहुँचाकर मेरे धर्म को, संयम को न छीन ले, मुझे पतित न कर दे।

संसार के जितने भी प्राणी हैं उनमें प्रायःकर किसी न किसी प्रकार का भय बना ही रहता है। भर्तृहरि ने लिखा 'वैराग्यमेवाभयं'' वैराग्यमेव अभयं अर्थात् जो वैराग्य से युक्त है वही अभययुक्त अवस्था को प्राप्त है। आचार्य महोदय कहते हैं कि संसार में ऐसे भी प्राणी हैं जो अभय अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं। कौन हैं वे जो अभय अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं, क्या है उनका लक्षण, उनकी प्रवृत्ति कैसी होती है? वो क्या करते हैं, कहाँ रहते हैं, क्या खाते–पीते हैं? कौन उनके माता–पिता–भाई बहिन हैं इत्यादि

जिज्ञासा मन में हैं कि ऐसा कौन है जो बिल्कुल भय रहित है। जिसके जीवन में किंचित् भी भय नहीं मौत का भी भय नहीं, ऐसा कौन है? उसे हम भी तो जानें समझें क्या उसका परिचय है। तो मनीषि कहते हैं–

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी,
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।
शैय्याभूमितले दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं,
ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वदसखे कस्मात् भयं योगिनः।।

वह योगी है जो योगों की साधना करने वाला है, जिसने अपने मन वचन काय पर संयम किया है, वह योगी है जो पापों से अलिप्त है। वह योगी है जिसने अपनी कषायों को शमशान भेज दिया है, मृत्यु के घाट उतार दिया है अथवा कोई कषाय किंचित् रह भी गयी तो उन्हें संयम के कारागार में डाल दिया है। वह योगी है जो नित्य आत्मा का आनंद लेने वाला है, समता का रस पीने वाला है। वह योगी है जो तपस्या करके अपने कर्मों को ध्वस्त कर रहा है, जो निरंतर व्रत–संयम का पालन करते हुये मोह की सेना से लड़ रहा है, मोह की सेना को नष्ट कर रहा है। ऐसे योगी के कुटुंब, परिवार के विषय में बताते हैं।

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी' उसके माता–पिता का परिचय बताते हुये कह रहे हैं कि साधु से कोई पूछे आपके माता–पिता का नाम क्या है तो साधु यदि इस प्रकार का परिचय देंगे तो संभव है उनमें ये गुण वृद्धि को प्राप्त होते रहेंगे। और यदि पूर्व संस्कारवशात् शरीर के जन्मदाता माता–पिता का नाम लेते रहेंगे तो आत्मा के गुणों तक शायद न पहुँच पायें। इसलिये यहाँ बता रहे हैं कि योगी का पिता 'धैर्य' है। धैर्य के माध्यम से योगी का जन्म हुआ कोई भी कार्य किया परिश्रम किया सफलता

नहीं मिली तो धैर्य धारण कर लिया धैर्य धारण कर ही वे अहोरात्रि मोक्षमार्ग का श्रम करते है आज नहीं तो कल सर्व कर्म क्षय को प्राप्त हो ही जाएँगे। फिर उस योगी की माँ कौन है क्षमा। यदि कोई भी उस योगी के प्रति प्रतिकूल व्यवहार करता है, उसका अहित करता है तो उस योगी में माँ के संस्कार जागृत हो जाते हैं, क्षमा के संस्कार जाग्रत हो जाते हैं जैसे एक बालक में माता–पिता के संस्कार विद्यमान होते हैं, दृष्टिगोचर होते हैं वैसे ही योगी की आत्मा में उसके पिता धैर्य और माँ क्षमा दोनों के संस्कार होते हैं। इसलिये योगी सबसे बड़ा धैर्यवान् होता है, वह कभी कुछ पाने के लिये अधीर नहीं होता। जो मिला वह पर्याप्त से भी ज्यादा है, जो मिला उसमें भी संतोष है। जो मेरा है वह मेरे पास आयेगा, जो मेरा नहीं है उसकी मैं कामना करता नहीं। जो मेरा है उसकी भी मैं कामना नहीं करता क्योंकि वह बिना मांगे मेरे पास आयेगा, बिना कामना के आयेगा और जो मेरा नहीं है वह सौ बार माँगने पर भी नहीं आयेगा। और मुझे जो चाहिये वह तो पहले से ही मेरे पास है ही इसलिये योगी धैर्यशील होता है।

योगी को एक सामान्य व्यक्ति मानकर चर्चा कर रहे हैं, उस योगी की कोई जीवनसंगिनी भी है जो चिरकाल तक परछाई की तरह उसके साथ रहे। 'शान्तिश्चिरं गेघ्निी' उसके घर को संभालने वाली उसके अंतरंग को संभालने वाली, घर में कोई उपद्रव न मचे वह शांति रूपी पत्नी उसके साथ रहती है। योगी एक क्षण के लिये भी शांति को छोड़ता नहीं, शांति के साथ हमेशा रमण करता है और शांति भी इस योगी को कभी छोड़ती नहीं। वह योगी को छोड़कर किसी दूसरे के पास जाना नहीं चाहती। और वह योगी जो धैर्यनंदन है, क्षमानंदन है उसे प्राप्त कर शांति अन्य को कैसे प्राप्त कर सकती है। वह प्रतिक्षण उसी के साथ रहना चाहती है। ऐसी शांति रूपी गेहिनी को वह योगी बाहर नहीं छोड़ता वह तो

उस चिरसंगिनी को अपने हृदय में बिठाल लेता है। कहता है–तुम मुझे छोड़कर के इक क्षण भी नहीं जाना, सदैव मम हृदय में वास करो। जैसे पुरूष घर के बाहर हो तो उसकी पत्नी उसका घर संभालती है ऐसे ही योगी बाहर की (बाह्य) साधना करे तप–त्याग करे नाना प्रकार के व्रत उपवास करे तो अंतरंग की शांति कहती है मैं ध्यान रखूँगी कहीं तुम्हारे चित्त में कलुषता न आये, परिणामों में विषमता न आये। वह रोकती भी है त्याग ज्यादा नहीं शक्ति अनुसार करो। अंदर की शांति जब तक अशांत न हो तब तक साधना करना उचित है, शांति यदि क्रांति में बदलने लगे तो समझना चाहिए अब साधना समीचीन नहीं है। साधना, तप, त्याग उतना करो जितने से कि शांति चित्त में विद्यमान रहे।

क्या उस योगी के बहिन–भाई भी हैं, मित्र–सखा भी हैं? हाँ हैं। 'सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः' उस योगी का मित्र है 'सत्य' जो सदा उसके साथ रहकर उसे हर प्रतिकूलता से बचाता है। वह सत्य मित्र श्वाँस की तरह से साथ रहता है। श्वाँस के बिना जैसे कोई व्यक्ति जी नहीं सकता ऐसे ही सत्यरूपी मित्र के बिना योगी रह नहीं सकता। वचनों में सत्य, क्रिया में सत्य, विचारों में सत्य, चेतना में सत्य वह उस सत्य के जल में अवगाहन करता चला जाता है। सत्य उसकी ही पर्याय बन जाता है, सत्य अभिन्न साथी की तरह से होता है, मित्र न दिखाई दे तो व्याकुल हो जाये। जैसे दूध अपने मित्र जल को देखकर व्याकुल हो जाता है और फिर उफनते दूध में जल की चार बूंदें डाल दो तो वह शांत हो जाता है ऐसे ही योगी सत्य को देखकर के ही प्रतिकूलता में भी अनुकूलता का अनुभव करता है और सोचता है मेरे साथ सत्य तो है, भले ही सब कुछ चला जाये तन चला जाये, वचन चले जायें, मन चला जाये, कुछ भी चला जाये कोई मेरे पुण्य को भी छीनकर ले जाये कुछ भी परवाह नहीं किन्तु सत्य मेरे साथ है तो सब मेरे साथ हैं।

उस योगी के परिवार में भाई बहिन भी हैं। क्योंकि भाई का बहिन के प्रति बड़ा अनुराग रहता है। भाई–बहिन जैसा पवित्र संबंध विश्व में दूसरा नहीं माना जा सकता। वह योगी 'दया' रूपी बहिन से युक्त रहता है। दया रूपी बहिन के द्वारा अपने योगी रूप छोटे भाई को गोदी में खिलाया जाता है। वह योगी दया के द्वारा परिपालित है। वह योगी बहिन से दया का संस्कार व स्नेह पाकर के और भी बलवान होता है। वह बहिन भी अपने भाई को देख–देखकर जीती है। दया जब उसके चित्त में आविर्भूत होती है तो योगी का विकास होता है। उस बहिन को आनंद आता है, वह दया अपने भाई के अभ्युदय को देखकर संतुष्ट होती है। अब इस योगी का भाई कौन है? 'मनः संयमः' मन पर संयम धारण करना। कई बार देह पर संयम करना बड़ा आसान होता है। शरीर की चेष्टायें नियंत्रित की जा सकती हैं, वचनों पर नियंत्रण किया जा सकता है पर मन पर नियंत्रण करना बड़ा कठिन है। किंतु वह संयम उस योगी का भाई है जो उसके साथ रहता है। वह भाई योगी के लिये कंधे की तरह से है सदैव उसका साथ देने वाला है।

इस योगी की शय्या क्या है? उसकी बहुत उत्तम शय्या है। राजा महाराजाओं की पुष्प की शय्या होती है, कोई राजा रत्नजड़ित शय्याओं पर शयन करते हैं, कोई मखमल की शय्या पर शयन करते हैं, कोई तुष की शय्या पर शयन करते हैं, कोई मूंज की शय्या पर विश्राम करते हैं तो कोई लकड़ी के फलक पर विश्राम करते हैं, कोई पाषाण के फलक आदि पर विश्राम करते हैं। तो फिर इनमें से योगी की शय्या कौन–सी है? उसकी सबसे उत्तम शय्या है जिसे उससे कोई छीन नहीं सकता। भूमि तल ही उसकी विशुद्ध शय्या है। जिस शय्या पर आनंद का अनुभव करता हुआ, चेतना के साथ भोग भोगता हुआ, अपनी शांति रूपी

चिर संगिनी के साथ भोग भोगता हुआ आनंद का अनुभव करता है। भोगी व्यक्ति तो रात्रि के प्रथम द्वितीय प्रहर में भोगों को भोगते हैं किंतु योगी रात्रि के अंतिम प्रहर में शांति के साथ शरीर की थकान दूर करने के लिये विश्राम करते हैं।

फिर वह योगी कैसे वस्त्र पहनता है, कैसे आभूषण धारण करता है? तो यहाँ बता रहे हैं 'दिशाोऽपि वसनं' उस योगी के दिशा ही वस्त्र हैं। वह दिगम्बर है दिशाओं को अपना अम्बर मानकर के अपनी आत्मा में रमण करता है। संसारी व्यक्ति के वस्त्र तो जीर्ण–शीर्ण होते हैं, मलिन होते हैं, कभी छोटे और बड़े भी होते हैं किंतु योगी के वस्त्र कभी मलिन नहीं होते, कभी जीर्ण–शीर्ण, छोटे–बड़े नहीं होते। एक बार उसने दिशाओं को वस्त्र मानकर पहन लिया तो अब जीवन में कभी वस्त्र बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसा योगी खाता क्या है? 'ज्ञानामृतं भोजनं' वह निरंतर ज्ञान रूपी अमृत का पान करता है। कभी स्वाध्याय के माध्यम से, कभी लेखनादि के माध्यम से वह श्रुतक्रीड़ा करता है। स्वाध्याय के भी पाँच भेद, वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय व ध र्मोपदेश। योगी वाचना के माध्यम से आप्त द्वारा प्रणीत, गणधर परमेष्ठी द्वारा संग्रहीत, मुनियों द्वारा लिपिबद्ध जो आर्षपरम्परा के पोषक शास्त्र हैं उन शास्त्रों का स्वाध्याय करता है। अपनी बुद्धि को परिपक्व बनाता है, पढ़ता है। व्यक्ति पढ़ेगा नहीं तो आगे की बात समझ में नहीं आयेगी। सामने वाला कितना भी समझाये किंतु जब स्वयं पढ़ने की लगन लग जाती है तब पढ़ता जाता है–पढ़ता जाता है। नयी–नयी बातें सामने आती हैं और समझ में आता चला जाता है।

वाचना उपरांत फिर भी कोई बात समझ में नहीं आये तो फिर पृच्छना करता है। अपने गुरुजनों से पूछता है कि मैंने ऐसा पढ़ा है, स्वाध्याय किया है इसका अर्थ यही है अन्य तो नहीं है,

विपरीत तो नहीं है, संशय युक्त तो नहीं है। जब उसके पूज्यजन गुरुजन उसका समाधान कर देते हैं तो उन्हें वह स्वीकार करता है। समाधान रूपी अमृत का पान कर एकांत में बैठकर तत्त्वचिंतन करता है। जब उसे अंतरात्मा से अनुभव के चिंतन आने लगते हैं तब वह आनंद से झूम उठता है। फिर जिस तत्त्व का चिंतन किया उसका बार–बार अभ्यास करता है, पुनरावृत्ति करता है जिससे विस्मृति में न आ जाये। जिससे स्वप्न में भी उसे वही ज्ञानामृत का पान करने मिले कभी मूर्च्छा आ जाये तब भी उसका धर्म ध्यान टूटे नहीं। इसलिये बार–बार उसकी पुनरावृत्ति करता है। और इसके उपरांत कोई व्यक्ति हित की कामना से उसके सामने आ जाये तो उन्हें भी वही ज्ञान का अमृत पिलाता है। ऐसा नहीं कि स्वयं पी जाये दूसरों को न दे। कोई सामने तृषातुर दिखाई देता है तो ज्ञानामृत का पान उसे भी कराता है।

सामने वाला भी उस ज्ञानामृत से तृप्त होता है। पान कराते–कराते उसे भी आनंद आता है धर्मोपदेश देते समय भी योगी आनंद का अनुभव करता है। जैसे कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के गले में ताजे पुष्पों की माला पहना रहा हो तो जिसके गले में माला पहनाई जा रही है उसे तो आनंद आ ही रहा है पुष्पों की गंध आ ही रही है साथ ही जो पुष्पों की माला पहना रहा है उसको भी सुगंध, अवश्य आती है। ऐसे ही योगी ज्ञानामृत का पान स्वयं करता है, दूसरों को ज्ञानामृत का पान कराता है तब निःसंदेह दोनों को बड़े आनंद का अनुभव होता है।

महानुभाव! निश्चय से जिसका ऐसा कुटुम्ब परिवार है, तो बताओ उस योगी को संसार में किस प्रकार का भय हो सकता है? जिसके कुटुंबी जन ऐसे हों उसे तो तीनों लोकों में भयभीत होने की आवश्यकता ही नहीं। आप भी यदि पूर्ण निर्भीक बनना चाहते हो तो योगी बनने की भावना भाओ, योगी बनने की साधना

करो, योगी बनने की उपासना करो। जब योगी बनने के लिये तुम्हारा चित्त व्याकुल हो जाये तब योग साधना प्रकट होगी। योग साधना करने वाला ही योगी बन जाता है आप भोगों से विरक्त होकर के योग साधना करने में समर्थ हों, ऐसी हम आप के प्रति मंगल भावना भाते हैं।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

कहाँ किस धन की महत्ता

जीवन में सुख और शांति का आविर्भाव हो, दुःखों से, विपत्तियों से, अनावश्यक संकटों और आपत्तियों से यह प्राणी अपने को कैसे बचाये। निरंतर चित्त में रहने वाली संक्लेशता किस प्रकार तिरोहित की जा सकती है। वह कौन सा उपाय है जिसके माध्यम से हमारी चेतना के क्षितिज पर आनंद का सूर्य उदित हो, हम प्रतिक्षण सहज स्वभाविक आनंद का अनुभव कर सकें? अपनी आत्मा के प्रत्येक प्रदेश से निःसृत होने वाले सुख की अनुभूति कैसे हो सकती है? किस प्रकार से हम योगी, ऋषि, मुनि, भगवंतों जैसे परम शांति को प्राप्त कर सकते हैं? क्योंकि जब गृहस्थ जीवन जीता है तो उसे आध्यात्मिक बातें स्वप्न की तरह से लगती हैं, कोरी कल्पना जैसी लगती हैं। वह सोचता है इन सभी सूत्र वाक्यों का मेरे जीवन में वैसे ही आविर्भाव नहीं हो सकता जैसे बालू को पेलकर के तेल नहीं निकाल सकते, जलमंथन से घी प्राप्त नहीं किया जा सकता, प्लास्टिक के पुष्पों में से गंध प्राप्त नहीं की जा सकती।

उसे ऐसा लगता है कि वर्तमानकाल के गृहस्थ जीवन में तो उसे धन की भी आवश्यकता है, उसकी दृष्टि में तो धन ही सुख और शांति का प्रधान हेतु है। वह कहता है जिस गृहस्थ के जीवन में धन नहीं उस गृहस्थ की कीमत दो कोड़ी की नहीं। इसलिये गृहस्थ को आवश्यकता पड़ती है धन की। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये, स्वयं के उदर की पूर्ति करने के लिये, व्यवहार धर्म का संचालन करने के लिये, मानव उपकार–समाज उत्थान करने के लिये, प्रभु परमात्मा की पूजा–भक्ति अर्चना करने के लिये, सत्पात्रों को दान देने के लिये, उसे पग–पग पर धन की आवश्यकता होती है।

बिना धन के वह स्वयं को केवल निर्धन ही नहीं समझता वरन् निष्प्राण ही समझता है। इसलिये नीतिकारों ने धन को ग्यारहवाँ प्राण मान लिया। और नीतिकार तो यहाँ तक कहते हैं कि ग्यारहवाँ प्राण जिसके पास नहीं है उसके तो 10 प्राण भी संकट में पड़े हैं, दस प्राण भी निराकुल जी नहीं सकते। जैसे गृहस्थ के लिये धन परम आवश्यक होता है, बाह्य वस्तु परम आवश्यक होती हैं ऐसे ही साधु–योगी–ऋषि–मुनि के लिये ज्ञानरूपी धन की परम आवश्यकता होती है। जैसे बाह्य धन के बिना गृहस्थ निर्धन होता है वैसे ही तत्त्वज्ञान–आत्मज्ञान ब्रह्मज्ञान के बिना योगी भी निर्धन होता है।

यदि गृहस्थ धन के बिना अपना जीवन जीता है तो उसे पग–पग पर प्रतिकूलता का अनुभव होता है, उसकी संक्लेशता बन जाती है उसका जीवन अभावग्रस्त बन जाता है। उसी प्रकार योगी को चाहे अनेकों शास्त्रों का ज्ञान न हो, श्लोक, गाथायें, मंत्रादि कंठस्थ न हों किंतु उसके पास इतना ज्ञान होना तो परम आवश्यक है जिसके माध्यम से वह आत्मा के स्वरूप को जान सके। अपने बह्मस्वरूप को पहचान ले। तत्त्वज्ञान उसके पास हो। वह इतना तो अनुभव में जान ले कि मेरा शरीर अलग है, आत्मा अलग है। जिसके पास इस प्रकार का ज्ञान भी नही है ऐसा योगी भी गरीब है, निर्धन है, बेचारा है।

धन महत्वपूर्ण होता है। ज्ञान को भी धन कहा और गृहस्थों के लिये धन को भी धन कहा लौकिक दृष्टि की अपेक्षा उनके जीवन के लिये श्रेष्ठ माना है। लौकिक दृष्टि भी सर्वथा मिथ्या नहीं होती है। लोक व्यवहार में जीने के लिये वह भी आवश्यक ही होती है। आप पढ़ते हैं स्तुति में–

भव विकट वन में कर्म वैरी, ज्ञान धन मेरा हर्‌यो
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो।।

इस संसार रूपी गहन जंगल में कर्मरूपी बैरी ने मेरे ज्ञानरूपी धन का अपहरण कर लिया है और तब मेरा ज्ञान रूपी धन लुट गया। तो वह संसारी प्राणी जो मनु की संतान का बीज है वह भ्रष्ट हो गया अपने कर्तव्य से, अपने इष्ट को भूल गया, अनिष्ट कार्य करने लगा अनिष्ट गति को प्राप्त करने लगा। जैसे कोई व्यक्ति विदेश से धन कमाकर ला रहा हो मार्ग में उसे चोर–डाकुओं ने लूट लिया, उसका सारा धन लुट गया, वर्षों की कमाई लुट गयी और उसे मार–पीट कर वहीं छोड़ दिया। तो वह व्यक्ति जिसका सब लुट जाता है वह भी पागल जैसा हो जाता है, यद्वा–तद्वा प्रवृत्ति करने लगता है ऐसे ही जिसका ज्ञान रूपी धन, कर्मों ने छीन लिया हो, कर्मरूपी डाकुओं ने छीन लिया हो उसकी गति भी वही होती है। योगी का धन ज्ञान है धर्मात्मा उससे ही जीता है। गृहस्थ का धन मुद्रा है, अन्य व्यक्ति साधन सामग्री को भी धन ही मानता है। जो जिस क्षेत्र में है वह उसे ही अपना धन मानता है और धन के माध्यम से जीवन सकुशल जीया जा सकता है यह धारणा पुरावैदिक काल से भारत में विद्यमान है। ऋषिमुनि इसी धारणा के अनुसार अपनी आत्मा का हित करते हैं। गृहस्थ भी अपने जीवन में सुख शांति की तलाश करते हैं। नीतिकारों ने लिखा है–

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः।
परलोके धनं धर्मः, शील सर्वत्र वै धनम्।।

जो मनीषी विद्वान् हैं, नीतियों को जिसने जीया है, जिन्होंने नीति रीति का कभी उल्लंघन नहीं किया, जिन्होंने सुख शांति का अनुभव किया, वे मनीषी विद्वान् कहते हैं– **'विदेशेषुधनं विद्या'**– विदेश व्यापार करने जाओ तो धन लेकर जाना उचित नहीं है, कोई भी व्यक्ति मार्ग में तुम्हें लूट सकता है। वह धन तुम्हारी मृत्यु का कारण भी बन सकता है इसलिये उस धन को साथ में

लेकर के जाना एक खतरे को साथ में लेकर जाना है। यह बाहर की सम्पत्ति तो विपत्ति का कारण है। किसी को मालूम पड़ जाये कि इस व्यक्ति के पास धन है तो कब किसका मन फिर जाये, ईमानदार भी बेईमान हो जाये, अहिंसक भी हिंसक हो जाये, रक्षक भी (पुलिस के आरक्षी भी) कब भक्षक बन जायें क्या कह सकते हैं। इसलिये बाहर का धन प्राणों को भी संकट में डालने वाला है।

विदेश में जाना है तो कौन सा धन ले जाना है? विदेश में विद्या ही धन का काम करती है। जिसके पास सत्कला है, विद्या है तो उस विद्या के माध्यम से विपुल धन प्राप्त किया जा सकता है। उस विद्या के माध्यम से राज्य सम्मान प्राप्त किया जा सकता है, उस विद्या के माध्यम से सुशील संस्कारवान् राजकुमारों से मित्रता की जा सकती है। समीचीन विद्या के माध्यम से अपने जीवन को भी सुखद और शांति से युक्त बनाया जा सकता है। समीचीन विद्या सर्वत्र मित्रों को देने वाली होती है स्व–पर का हित करने वाली होती है। कल्याण की प्रमुख, साथी विद्या मानी जाती है।

विद्यावान् समीचीन विद्या के माध्यम से अपना उदर पूर्ण कर सकता है और दूसरे के उदर पूर्ति में भी निमित्त बन सकता है। चाहे समीचीन कला कोई भी क्यों न हो, उसके पास चाहे गायन कला है, संगीत कला है, नृत्यकला है, चाहे ज्योतिष कला है, मंत्रविद्या है, वास्तु विद्या है, तंत्र विद्या है व्यापार चिकित्सा या सेवा कला है, चाहे और भी पुरूषों की 72 प्रकार की विद्या होती हैं उन कलाओं में से कोई भी कला है, जो जिस कला में निपुण होता है वह उस कला के माध्यम से प्रसिद्धि को प्राप्त करता है और धन भी अर्जन करता है।

यहाँ तक कि इन्द्रजालिक जादूगर की भी एक कला होती है जो अपना जादू दिखाकर के लोगों का चित्त आकृष्ट करता है, दूसरों का मनोरंजन करता है। काव्य भी एक कला है वीररस के साथ अपनी बात को कहना काव्य का उच्चारण करना, कायरों में वीरता भर देना भी एक कला है। रागी व्यक्तियों को वैरागी बना देना भी एक कला है, द्वन्द की स्थिति को निपटाकर के प्रेम का संचार कर देना भी एक कला है।

विदेशों में सत्कला न केवल धन देने वाली होती है वरन् वह सत्कला मित्रों को भी देती है, प्रतिष्ठा को भी देती है, यश को देने वाली होती है और यथेष्ट साधन–सामग्री को देने वाली होती है। आगे कहा–'व्यसनेषु धनं मतिः' यहाँ व्यसन से आशय है 'व्यापार', व्यापार में जिसके पास ज्यादा धन है वह ज्यादा धन कमा ले ऐसा नहीं है एक व्यक्ति अपने व्यापार में करोड़ों रुपये लगाकर भी महीने में लाख रुपये नहीं कमा सकता। दूसरा व्यक्ति लाखों लगाकर के लाखों कमा रहा है, एक व्यक्ति हजारों रुपये लगाकर भी महीने में एक लाख रुपये कमा लेता है, एक व्यक्ति बिना रुपये लगाये भी महीने में एक लाख रूपये कमा रहा है। तो धन से धन कमाया जा सकता है, ये युक्ति है किंतु धन से धन कमा ही लें यह अनिवार्य नहीं है। जिसके पास कुशल मति है, जो बुद्धिमान है, जो प्रवीण है, चतुर है वह व्यक्ति धन कमाने में, व्यापार करने में चतुर होता है, जो व्यक्ति सरल और सहज है व्यापार नहीं कर सकता। राज्य संचालन के भी कुछ नियम होते हैं, योग्यतायें होती हैं तो व्यापार करने की भी कुछ योग्यतायें होती हैं। वह योग्यता होती है कुशल मति (बुद्धि) के साथ। किस वस्तु की कहाँ पर ज्यादा आवश्यकता है उस वस्तु को वहां पर वितरित करना, कौन सी वस्तु कहाँ पर सस्ती मिल

सकती है तो वहाँ से क्रय करना और कहाँ पर काम करने वाले मजदूर सस्ते मिलेंगे वहाँ पर फैक्ट्री लगाना, कहाँ पर व्यक्ति बेरोजगार बैठे हैं उन्हें कौन सा काम दिया जा सकता है वहाँ जाकर के उनसे काम लेना, इस प्रकार जिसके पास बुद्धि है वह व्यक्ति अनेक लोगों को रोजगार देकर अपनी आजीविका भी सकुशल चला सकता है।

तो व्यापार में बुद्धि ही धन है, बुद्धि के माध्यम से वह धन का अर्जन भी कर सकता है और बुद्धि के माध्यम से मान–सम्मान भी अर्जित कर सकता है, बुद्धि के माध्यम से अनेकों का हित भी कर सकता है, बुद्धि के माध्यम से स्वयं के और दूसरों के संकट भी टाल सकता है। तो बुद्धि भी महत्वपूर्ण है वह भी एक धन है।

'परलोके धनं धर्मः'–परलोक के लिये गमन करते समय यहाँ का कोई धन साथ नहीं जाता, एक पाई भी साथ नहीं जाती। चाहे कोई व्यक्ति इस जन्म में निर्धन है और चाहे कोई बहुत अमीर, राजा ही क्यों न हो, अरबों–खरबों की सम्पत्ति भी उसके पास हो तब भी साथ में एक पाई भी लेकर नहीं जा सकता। उसका शरीर भी साथ नहीं जाता वस्त्राभूषण सब यहीं रह जाते हैं। कोई रिश्तेदार–संबंधी, उसको चाहने वाले भी साथ में नहीं जाते। परलोक में जहाँ उसे जाना है वहाँ उसे यहाँ की कोई वस्तु काम नहीं आयेगी किंतु यहाँ पर किया गया धर्म उसको परलोक में सुख–शांति देने में निमित्त बन सकता है। आचार्यों ने इसीलिये कहा कि परलोक में जो धन–स्वरूप है वह धर्म है। यहाँ जो धर्म से रिक्त है वह परलोक में भी सुख–शांति से रिक्त ही रहेगा।

आगे कहा–शील सर्वत्रवै धनम्'' शीलव्रत का पालन करना, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना यह लोकत्रय में अमूल्य धन की तरह से है। जिसके पास शील रूपी धन है ऐसा व्यक्ति उस शीलरूपी धन के माध्यम से अपने जीवन को सुखद और शांतिस्वरूप बना

सकता है। अपना हित कर सकता है। शीलवान् पुरुष देवों के द्वारा भी पूज्य होते हैं, शीलवान् पुरुष यश–प्रतिष्ठा, ख्याति को प्राप्त करता है, शीलवान् पुरुष स्व और पर के दुःखों को दूर करने में निमित्त होता है, शीलवान् पुरुष इस भव में भी देव तुल्य होता है और पर भव में भी देवतुल्य होता है।

महानुभाव! यहाँ चार तरह के धन की बात कही, ये धन जिसके पास हैं वह व्यक्ति अपने जीवन में सुख–शांति को प्राप्त करने में समर्थ होता है। जिसे सुख–शांति की आकांक्षा है तो वह ये चार प्रकार के धन अपने पद के अनुसार प्राप्त करे। आध्यात्मिक व्यक्ति के लिये आध्यात्मिक विद्या ही सुख–शांति की जनक है वही उसका धन है। वह आध्यात्मिक विद्या जिसके पास नहीं है, तत्त्वबोध जिसके पास नहीं है वह व्यक्ति कभी भी सुख–शांति को प्राप्त नहीं कर सकता। आप सभी इसी के अनुसार अपने जीवन को सुख–शांतिमय बनायें, जिससे अपना कल्याण व हित कर सकें, दूसरों का हित करने में समर्थ बन सकें। ऐसी हम आपके प्रति मंगल भावना भाते हैं। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

धर्म का स्वरूप

जीवन अनेक प्रकार के निमित्तों के बीच में इस प्रकार से उलझा हुआ है जिसे सुलझा पाना बिना विवेक के संभव नहीं है। जितना–जितना जीवन को सुलझाने का प्रयास किया जाता है जीवन उतना ही उलझता दिखाई देता है। जैसे कोई बालक गंदे पानी को जो तालाब या गड्ढे में भरा हो उसे देखता है, उस गंदे पानी में हाथ डालकर उसकी गंदगी निकालना चाहता है त्यों–त्यों पानी गंदा होता चला जाता है। उस पानी में जब movement होता ही हलन–चलन होती है में जमी हुई गंदगी उभर कर आती है। ऐसे है व्यक्ति अपने जीवन को जितना सुलझाना चाहता है, जितना परेशानियों से बाहर निकलना चाहता है उतना ही और ज्यादा उलझ जाता है। सोचता है कि बस अब मैं मोह–माया का त्याग करके आत्महित में प्रवृत्ति करूँगा किन्तु तब तक अपने जीवन से संबंधित कोई दूसरी कड़ी टूट जाती है तो पुनः उसे जोड़ने में लग जाता है, फिर सोचता है बस ये कड़ी जुड़ जाये तब मैं निकल जाऊँ, फिर तीसरी कड़ी टूट जाती है, उसके जोड़ने के पहले, पुनः दो कड़ी टूटी दिखाई देती, जोड़ने की बार–बार चेष्टा करता है और होता ये है कि वह संसारी प्राण ी उस संसार रूपी वृक्ष पर लटका हुआ, मधुबिन्दु के लोभ से उस वृक्ष को छोड़ नहीं पाते।

एक व्यक्ति बड़ी निराकुलता के साथ जंगल में चला जा रहा था किन्तु अचानक उसे हाथी के चिंघाड़ने की आवाज सुनाई दी, सामने से हाथी आता दिखाई दिया। उसने देखा हाथी उच्छृंखल है मेरे प्राण भी ले सकता है इसलिये वह दौड़ता चला जाता है किन्तु हाथी उसके पीछे पड़ गया। वह व्यक्ति तेजी से दौड़ता जाता है उसे बचाव के लिये कोई स्थान नहीं मिल रहा। वह व्यक्ति दौड़कर सामने पहाड़ पर चढ़ गया, हाथी उस पर

भी चढ़ गया। अब सोचता है कहाँ जाऊँ, उसने छलांग लगाई और एक वृक्ष की शाखा पर लटक गया। हाथी ने भी पीछा नहीं छोड़ा, वह भी उसके पीछे आ गया और उस वृक्ष को अपनी सूंड में लपेटकर के उखाड़ने का प्रयास करने लगा। उस व्यक्ति ने देखा कि मैं जिस शाखा को पकड़कर लटका हुआ हूँ, उस डाली को दो चूहे काट रहे हैं वे जंगली चूहे है–एक काला एक सफेद। उस डाली पर मधुमक्खी का छत्ता है जैसे ही डाली पकड़ी छत्ता हिल गया और मधुमक्खी उड़कर उसके शरीर से चिपटकर उसे खाने लगी। मधुमक्खियों के छत्ते से शहद की बूंद टपकने लगी, वह व्यक्ति जो दौड़कर के आया था, लम्बी–लम्बी श्वाँसे ले रहा था, उसका मुँह खुल गया, उसके मुँह में अचानक एक शहद की बूंद गिरी। उसे वह बड़ी मिष्ट सी लगी। अब उसने आँख बंद करके थोड़ा श्वाँस लिया, किंतु इधर हाथी भी पेड़ उखाड़ने के लिये तत्पर है। नीचे उसने देखा जहाँ वह लटका हुआ है वहाँ बहुत बड़ा कुआँ है उस कुयें में चार भयंकर सर्प और बीच में मुँह खोलकर अजगर पड़ा हुआ है।

अब तो वह सोच रहा है मैं क्या करूँ कैसे बचूँ, तभी आकाश मार्ग से एक विमान जा रहा था, उस विमान में विद्याधर और विद्याधरी थे। विद्याधरी ने कहा–प्रिये! देखो वह मनुष्य जो वृक्ष से लटका हुआ है, हाथी उसे मारना चाहता है आप इसे बचाओ। वह विद्याधर विद्या के बल से विमान से उतरा और कहने लगा भाई! तुम मेरे विमान में आ जाओ, मैं तुम्हें बचा लूंगा अन्यथा यहाँ तुम्हारी मृत्यु सुनिश्चित है। तुम यदि कूप में गिरते हो तब भी मृत्यु है, हाथी ने पेड़ उखाड़ दिया तब भी आपकी मृत्यु सुनिश्चित है। तुम्हें मधुमक्खी काट रही है तुम इसे छोड़कर के मेरे पास आओ। वह व्यक्ति कहता है आप ठीक कहते हो, और मैं आपके पास आना चाहता हूँ बस अभी आया, बस एक बूंद और आने दो। और एक बूंद आ गयी, फिर विद्याधर कहता है अब तो

चलो, वह कहता है बस एक बूंद और आने दो जो सामने से आ रही है। वह बूंद भी मुख में आ गयी अब तो चलो, पर एक और, एक और ऐसा वह कहता रहता है। उस विद्याधर को खड़े–खड़े बहुत देर हो गयी, वह व्यक्ति उसके साथ नहीं चला। उसने विद्याधरी से कहा–तुम कहती थीं इसके प्राण बचाओ किन्तु ये स्वयं ही बचना नहीं चाहता मैं कैसे बचाऊँ।

महानुभाव! वह विद्याधर कोई और नहीं वे हैं साधु संत जिन्हें उनकी 'प्रेयसी' अर्थात् अंदर की करूणा प्रेरणा देती है कि संसारी प्राणियों को बचाओ, और ये जो डाली को पकड़ा हुआ है वह है संसारी प्राणी। जो हाथी वृक्ष को उखाड़ रहा है वह हाथी है 'काल'।, 'यमराज'। जो वृक्ष है उस वृक्ष का नाम है 'संसार वृक्ष'। जो नीचे कूप है जिसमें चार सर्प हैं वे हैं चार गति, अजगर मानो निगोद। दो चूहे शाखा को काट रहे हैं वे शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष रूप दिन है जिनसे आयुरूपी शाखा कट रही है और जो मधुमक्खियाँ उसे काट रही हैं वे हैं संसार की झंझटें, और कोई मधुबिन्दु मुख में गिरता है तो समझो संसार के भोगों का किंचित् सुख, सुखाभास जिसे वह सुख मान रहा है।

महानुभाव! संसारी प्राणी की वास्तव में दशा तो यही है, किन्तु मोह में वह ऐसा आकण्ठ डूबा हुआ है कि उसे आत्मा का भान होता ही नहीं। राग में ऐसा रंग गया है उस राग के अलावा दूसरा उसे कोई भाता ही नहीं। वैराग्य नाम की चीज उसे अच्छी ही नहीं लगती,

''आतम के अहित विशय कशाय इनमें ऐसी परिणति न जाय''

आत्मा का अहित करने वाले विषय कषाय हैं। भगवान् से भक्त कहता है कि ''मेरी परिणति इसमें न जाये, पर बार–बार मेरा मन विषय कषाय में चला जाता है।''

आतमहित हेतु विराग ज्ञान ते लखें आपको कश्ट दान''

आत्म का हित करने वाला वैराग्य है, सम्यग्ज्ञान है। यदि सम्यक् ज्ञान की ज्योति चेतना में प्रज्ज्वलित हो जाये तो उसे निःसंदेह अपनी आत्मा का बोध हो जाये, शरीर पृथक् है बोध हो जाये, इसका मोह दूर हो जाये। यह मोह–माया में लिपटा हुआ जीव पर को अपना मानकर बैठा है।

पर को अपना मान बैठा, निज को पहचाना नहीं
भूल है यह आपकी जो आपको जाना नहीं
आपको जाने बिना परमात्म पद पाना नहीं,
परमात्म पद पाकर के फिर संसार में आना नहीं।।

किंतु मोही प्राणी अपने आप को पहचान नहीं पाता। अपने शरीर को ही मानता है, अपने नाम को ही स्वयं मानता है। आपसे कोई पूछे कि आप कौन हैं तो आप उसे अपना नाम बता दोगे। कोई कहे अपने नाम को छोड़ो फिर बताओ तो आप बताओगे मैं इंसान हूँ, मनुष्य हूँ। पर ये शरीर आत्मा नहीं है, आत्मा का कोई नाम नहीं है, आत्मा कोई जाति नहीं है, आत्मा का कोई रंग नहीं है, आत्मा आभूषण वस्त्रों से सहित नहीं है ये तो सब लेबल लगा दिये हैं आत्मा के ऊपर, इन सब लेबलों को हटाकर के अलग कर दो, फिर देखो आत्मा क्या है। तब आत्मा वास्तव में समझ में आयेगी कि वास्तविक रूप आत्मा का है क्या। अब तक आत्मा पर Label लगे रहते हैं, जो बोर्ड लगे रहते हैं उन बोर्ड्स को पढ़कर के दुनिया वाले तो भ्रम में हैं हीं। अरे! इस शरीर को मेरी आत्मा मानता है मुझे नहीं जानते।

तुम नहीं जानते तो कोई बात नहीं पर आश्चर्य की बात तो ये ही है कि मैं ही अपनी आत्मा को नहीं जानता। जब तक मैं ही अपने आप को नहीं जानूँगा तो सामने वाला मुझे जाने या न जाने उससे क्या फर्क पड़ता है। मैंने अपने आप को जान लिया

सामने के जानने था ना जानने से मुझे क्या फर्क पड़ता है, किंतु ये फर्क पड़ता है कि मेरे जानने से मैं अपनी आत्मा को जान लूँगा तो बार–बार शरीर रूपी कारागृह में नहीं रहना पड़ेगा। इस शरीर रूपी कारागृह से मुक्ति मिल जायेगी। यदि मैंने अपने आप को नहीं जाना तो शरीर रूपी कारागृह से मुक्ति न होगी।

संसारी जीव राग में आकर के, द्वेष से युक्त होकर के, मोह में आविष्ट होकर निरंतर कर्माश्रव कर रहा है, निरंतर कर्मों का बंध किये जा रहा है। और जब आत्मा में कर्मों का बंध हो रहा है तो आत्मा पुनः–पुनः कर्मों का फल भोगने के लिये बाधित जैसे–जैसे कर्मों का बंध करती है उस–उस प्रकार के शरीर को प्राप्त करना पड़ता है, उस–उस प्रकार के शरीर को प्राप्त करके उन–उन कर्मों को भोगना पड़ता है। कभी पुण्य के उदय से मनुष्य शरीर प्राप्त होता है तो कभी पाप के उदय से पशु का शरीर प्राप्त होता है और तीव्र पाप का उदय आ गया तो नारकी का शरीर प्राप्त होता है और कहीं सातिशय पुण्य का उदय आ गया तो देव का शरीर प्राप्त होता है किन्तु इन शरीरों को प्राप्त करने का मेरा स्वभाव नहीं है, मेरी नियति नहीं है, मेरी प्रकृति नहीं है। मैं तो शरीर से रहित हूँ, अमूर्तिक हूँ, शरीरातीत हूँ, निष्कलंक आत्मा हूँ, निकलंक आत्मा हूँ, निकल परमात्मा हूँ। नित्य, निरंजन, अविकारी, अविनाशी हूँ मुझे उस स्वरूप को पहचानना है और उसी को प्राप्त करना है। जब तक जानूँगा नहीं तब तक प्राप्त कैसे कर सकूँगा। बिना जाने तो कोई प्राप्त कर नहीं सकता।

"बिन जानें ते दोष–गुणन को कैसे तजिये गहिये"

बिना जाने दोषों का परित्याग नहीं हो सकता, और बिना जाने गुणों को ग्रहण नहीं किया जा सकता। जब आपको ज्ञान हो यह अमृत है या जहर तभी आप जहर को छोड़कर अमृत को पी सकते हो। ज्ञान नहीं है तो हो सकता है अमृत के स्थान पर

जहर का पान कर लें। आज संसारी प्राणी भोगों का जहर पी रहे हैं विषयों का विष पी रहे हैं। योगी योग साधना करके आत्मा से निःसृत होने वाला आत्मा का आनंदरूपी रस का पान कर रहा है, उस रस का पान संसार का प्रत्येक प्राणी कर सकता है। साधु ऋषि मुनि चाहते हैं संसार के सभी प्राणी भी आत्मा के आनंद का अनुभव करें, आनंद अमृत का पान करें, इस संसार की कीचड़ में क्यों पड़े हैं? भोगों के दलदल में क्यों फंसे हैं, क्यों इन पापों के काँटों में उलझ रहे हैं, क्यों इन कषायों की अग्नि में जल रहे हैं, इनसे मुक्त क्यों नहीं होना चाहते। यदि ये मुक्त होना चाहे तो हो सकते हैं, संसार की कोई भी वस्तु इन्हें कर्मों से नहीं बांध सकती।

महानुभाव! ये विवेक तभी जागृत हो सकता है जब ये जीव सत्संगति करना प्रारंभ करे। जब ये जीव एकांत में सुबह–शाम, मध्याह्न काल, मध्यरात्रि में बैठकर के प्रभु परमात्मा का स्मरण करे, अपनी आत्मा के स्वरूप का चिंतवन करें। मैं भी वैसा बन सकता हूँ ऐसा चिंतवन करे, भावना भाये, प्रभु परमात्मा का ध्यान लगाये तो ये भी परमात्मा बन सकता है। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। प्रत्येक कंकर में शंकर बनने की सामर्थ्य है, एक मिट्टी कलश बन सकती है तो अन्य मिट्टी भी कलश बन सकती है, एक सोने की डली यदि आभूषण बन सकती है तो दूसरी डली भी आभूषण बन सकती है। एक टुकड़ा तराशकर यदि हीरा अन्य रत्न बन सकता है तो वैसे ही दूसरे टुकड़ा भी तराशने पर हीरा या रत्न बन सकते हैं उनकी चमक भी दिव्य हो सकती है। एक बुझा हुआ दीपक जल सकता है तो दूसरा बुझा दीपक भी जल सकता है। मेहंदी की एक पत्ती में से रंग आ सकता है तो दूसरी पत्ती में से भी रंग आ सकता है। किंतु पुरूषार्थ के बिना नहीं, पुरूषार्थ तो करना पड़ेगा।

कुसंस्कारों को ग्रहण करने का पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता वे तो अनादि काल से हमारी आत्मा में पड़े हैं अविद्या को प्राप्त करने का पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता अनादि काल से वे संस्कार हमारे जीवन में पड़े हैं। कोई भी स्कूल ऐसा नहीं जहाँ गंदी बातें सिखाई जाती हों। जो बच्चे गंदे, कुसंस्कारी, शरारती हो गये तो उन कुसंस्कारों को देने वाला कोई स्कूल नहीं है। सुसंस्कार देने के हजारों लाखों गुरूकुल, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय हैं, शिक्षाबोर्ड हैं सब कुछ है जो अच्छी बातें सिखाते हैं किंतु फिर भी सुसंस्कार बड़ी मुश्किल से आते हैं, और कुसंस्कार बिना सिखाये भी आ जाते हैं। क्योंकि कुसंस्कार अनादि काल से हमारी आत्मा में पड़े हैं। कुसंस्कारो को बुद्धिपूर्वक नष्ट करना पड़ेगा। जैसे कोई कुशल महिला चावल में से कंकर को निकाल देती है, उन शुद्ध चावलों की खीर या भात पकाती है, ऐसे ही हमें अपने जीवन में से कुसंस्कारों के कंकर पत्थरों को निकाल फेंकना पड़ेगा तभी हमारा जीवन स्व–पर के लिये सुखद और शांतिमय बन पायेगा। किंतु विवेक के बिना ये संभव नहीं है।

महानुभाव! धर्म भी तब तक रूचता नहीं है जब तक अन्तरंग में ज्ञान का प्रादुर्भाव न हो। सम्यक् ज्ञान के चक्षु न खुलें तब तक धर्म भी अच्छी नहीं लगता है। ऐसा प्रतीत होता है, संसार ही अच्छा है, भौतिक वैभव ही अच्छा है, धनसम्पत्ति अच्छी है, विषयभोग अच्छे हैं उन्हीं का पोषण अच्छा है किन्तु जब उसके ज्ञान–चक्षु खुलते हैं तब उसे लगता है वास्तव में धर्म ही सुख–शांति देने वाला है। आचार्य कुलभद्र स्वामी जी ने धर्म का स्वरूप संक्षेप में कहा–

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मानः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

सम्पूर्ण धर्म को सुनो, और अच्छी तरह से सुनो और सुनते जाओ किंतु सुनकर के छोड़ नहीं देना, 'श्रुत्वा चैव अवधार्यताम्' सुनकर के अब उसे धारण करो। धर्म को धारण किया जाता है, जो धारण किया जाये वह धर्म है, धर्म कथनी का विषय नहीं है करनी का विषय है। धर्म धारण करने से कर्मों का क्षय होता है, दुःखों का नाश होता है, दुर्गति का नाश होता है और विकार परिण ाति, विभाव परिणति का नाश होता है और ये आत्मा परमात्मा बनता है इसलिये धर्म को धारण करना आवश्यक है। वह धर्म आत्मा में धारण किया जाता है। धर्म की प्रवृत्ति शरीर से, वचनों से, मन से की जाती है।

फिर धर्म का सारांश क्या है, सम्पूर्ण धर्मों का सार बस इतना बताया–''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'' कोई भी व्यवहार, क्रिया, वचन और चिंतन आत्मा के प्रतिकूल है जिसके माध्यम से आपकी आत्मा को कष्ट पहुँचता है तो ऐसा व्यवहार दूसरों के प्रति भी मत करो। चाहे कोई वचन आपको दुःख देने वाले हैं, वे दूसरों को भी मत बोलो। जो क्रिया आपके सामने कोई करता हो, वह आपको दुःख देती हो तो वैसी क्रिया दूसरों के सामने मत करो। किसी और का जो विचार आपको कष्ट देता हो, ऐसे विचार अपने मन में मत लाओ।

भगवान् महावीर स्वामी ने संक्षेप में यही तो कहा–जीओ और जीने दो, आप भी निराकुलता के साथ जीओ और दूसरों को भी निराकुलता के साथ जीने दो। दूसरे की जिंदगी छीनकर के जीने वाला व्यक्ति निःसंदेह सम्यक् जीवन नहीं जी रहा है, हमें दूसरों की जिंदगी छीनने का कोई अधिकार नहीं है, हमें दूसरों की जिंदगी जीने में निमित्त बनना है तब सामने वाला जीव भी हमारी जिंदगी में निमित्त बनेगा। हम दूसरों की सुख शांति में निमित्त बनें, हेतु बनें, कारण बनें, तो सामने वाले भी हमारे

जीवन की सुख–शांति में हेतु व कारण बनेंगे। तो दूसरों के प्रति हमें वैसा व्यवहार नहीं करना चाहिये जो हम स्वयं के लिए नहीं चाहते।

अपनी आत्मा को सुख चाहिये तो दूसरों की आत्मा को सुख देना ही पड़ेगा। अपनी आत्मा में शांति चाहिये तो दूसरों की आत्मा शांति का व्यवहार करना ही पड़ेगा। हम शिष्ट–मिष्ट वचन सुनना चाहते हैं हितकारी वचन सुनना चाहते हैं तो दूसरों के लिये भी वैसे ही हितकारी वचन बोलें। यदि हम चाहते हैं कि हमारे अधीनस्थ, हमारे समीपस्थ, अच्छी क्रिया करें तो हमें भी अच्छी क्रिया करनी चाहिये। हम चाहते हैं सबके विचार अच्छे हों तो हमारे विचार भी अच्छे होना चाहिये तब ही हम अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेंगे।

अपनी आत्मा का कल्याण करने में जो समर्थ हो जाता है वो ही दूसरों का कल्याण करने में निमित्त बन सकता है, जो अपनी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ नहीं होता वह दूसरों का भी कल्याण नहीं कर पाता। आप सभी अपनी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ बनें व दूसरों के कल्याण में भी निमित्त बनें ऐसी भावना आप सभी के प्रति भाते हैं, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय''
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

''पुण्य के तेरह फल''

महानुभाव! संसार में जितने भी प्राणी हैं वे या तो पुण्य के फल को भोग रहे हैं या पाप के फल को। कुछ जीव ऐसे हैं जो मिश्रफल को भोग रहे हैं अर्थात् पुण्य की अधिकता पाप की न्यूनता या पाप की अधिकता पुण्य की न्यूनता। पाप का फल अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति, दुर्गति की प्राप्ति, दुःखों व, प्रतिकूलताओं की प्राप्ति है। पुण्य का फल इष्ट पदार्थों की प्राप्ति, अनुकूल पदार्थों की प्राप्ति, जीवन में सुख और शांति की प्राप्ति है। संसारी प्राणी को प्रारंभ में पुण्य के फल की आवश्यकता है। क्योंकि पुण्य का फल प्राप्त किये बिना वह संसारी प्राणी मोक्ष मार्ग में संलग्न नहीं हो सकता। मोक्षमार्ग पापी जीवों को नहीं मिलता, पुण्यात्मा जीवों को प्राप्त होता है। पुण्यात्मा जीवों की और भी अधिक विशेषतायें है जो उन्हें प्राप्त होती हैं, पापी जीवों को वह प्राप्त नहीं होती।

संसार में रहकर के यदि संसार का सुख भी चाहिये तो वह भी पुण्य के माध्यम से प्राप्त होता है। इसके संबंध में आचार्यों ने लिखा है–

मानुष्यं वर वंश जन्म विभवो दीर्घायुरारोग्यता,
सन्मित्र सुसुतं सती प्रियतमा भक्तिश्च तीर्थंकरे।
विद्वत्तं सुजनत्व–मिन्द्रियजयं, सत्पात्रदानेरति,
ऐते पुण्य बिना त्रयोदशगुणा संसारिणां दुर्लभः।।

आचार्य महोदय कह रहे हैं कि पुण्य के बिना ये तेरह गुण प्राप्त नहीं होते। साधु तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करता है तो श्रावक 13 प्रकार के पुण्य फल की कामना करता है। वह कौन–कौन से फल हैं जो पुण्य बिना प्राप्त नहीं होते हैं। 'मानुष्यं'–मनुष्यभव की प्राप्ति पाप के उदय से नहीं होती, उसके लिये बहुत पुण्य चाहिये, पाप के उदय से नरक–तिर्यंय गति की

प्राप्ति होती है, पाप के उदय से देव दुर्गति भी हो सकती है किन्तु मनुष्य भव की प्राप्ति पुण्य का फल है। बिना मनुष्य भव को प्राप्त किये संयमी, सकलव्रती नहीं हो सकता। बिना मनुष्य भव के कोई भी जीव महाव्रती, परमेष्ठी नहीं बन सकता। बिना मनुष्य भव के कोई भी जीव कर्मों को नष्ट करने में समर्थ नहीं होता। इसलिये मनुष्य पर्याय पुण्य का फल है।

मनुष्य जन्म प्राप्त करना, उसमें भी वर अर्थात् उत्तम, वंश श्रेष्ठ कुल में, जन्म लेना। जिस कुल में जन्म लेकर सकलव्रतों को धारण किया जा सके। म्लेच्छ आदि की पर्याय में जन्म न हो, या लब्धि अपर्याप्तक जीव न बनें, मनुष्य यदि उत्कृष्ट वंश में जन्म लेता है तो वह और पुण्य का उदय है। इसके साथ–साथ यदि मनुष्यभव है, उत्कृष्टवंश है उसके प्राप्त करके उसे 'विभवो' संसार का वैभव प्राप्त हो रहा है, यथेच्छ भोग सामग्री प्राप्त हो रही है, साधन सामग्री प्राप्त हो रही है जिसे प्राप्त करके वह अपने धार्मिक कर्त्तव्यों का पालन कर सके, जिसे प्राप्त करके वह अपना उपयोग धर्म में लगा सके, जिसे प्राप्त करके वह पापों से बच सके, जिसे प्राप्त करके वह अन्य–अन्य पुण्य के कार्य सके। पर्याप्त धन प्राप्त होना यह भी पुण्य का फल है। निर्धनता पाप का फल है, पुण्य के माध्यम से व्यक्ति अल्प पुरूषार्थ से भी प्रचुर मात्रा में धन प्राप्त करता है। पाप के उदय में बहुत पुरूषार्थ करने पर भी अल्पलाभ प्राप्त करता है तो पुण्य का यह भी फल है कि उसे वैभव की प्राप्ति हो, जिस वैभव को प्राप्त करके वह अपने चित्त को धर्म में लगा सके।

यदि श्रावक के पास पर्याप्त धन नहीं है तो वह अपने मन को धर्म में नहीं लगा सकता। धन होता है तो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके शेष समय में धर्म के कार्य सम्पन्न कर सकता है। और पर्याप्त धन ही नहीं है स्वयं के उदर पूर्ति

के लिये ही धन नहीं है, अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये भी पर्याप्त धन नहीं है तो वह अपने उदर पूर्ति के लिये, अपने परिवार को भरण–पोषण करने के लिये एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये व्याकुल चित्त रहेगा इसलिये उसे पर्याप्त धन तो चाहिये।

आगे कहा–**'दीर्घायु'**–पुण्य के उदय से ही पूर्ण आयु की प्राप्ति होती है, पाप के उदय से व्यक्ति अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है, पाप के उदय से व्यक्ति कभी किसी accident का शिकार हो गया, कभी वह किसी रोग के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गया, कभी जन्म लेते ही मृत्यु को प्राप्त हो गया, कभी महामारी, दुर्भिक्ष, कभी अन्य प्रकार की कोई प्रतिकूलता हुयी तो वह अकाल मृत्यु पाप का फल है, पुण्य का नहीं। कोई व्यक्ति यह सोचे कि वे बड़े पुण्यात्मा थे जो accident में मर गये, अगर accident में मृत्यु को प्राप्त हुये है तो पुण्यात्मा नहीं। क्योंकि पुण्यात्मा व्यक्ति accident से नहीं यम सल्लेखनापूर्वक अपने शरीर का त्याग करता है, समता भावों के साथ अपने शरीर का त्याग करता है, पंच परमेष्ठी की सन्निधि में शरीर का त्याग करता है, धर्मध्यान के साथ अपने शरीर का परित्याग करता है। Accident आदि में यदि मृत्यु हुयी है तो उसे कैसे पुण्य पुरूष कह सकते हैं। आचार्य महोदय कह रहे हैं कि पुण्य पुरूष दीर्घायु भोगता है वह पूर्णायु पुण्य का फल हैं।

आगे कहा–**'आरोग्यता'** कोई प्राणी ऐसे भी होते हैं जो जन्म से ही रोगी हैं, कोई न कोई रोग लगा है जन्म से या बाल्यावस्था–किशोरावस्था से ही रोग लगा है तो कोई व्यक्ति ऐसा भी होता है कि जीवन के अंतिम क्षण तक वह निरोगी रहता है। उसके शरीर में कोई रोग नहीं। कदाचित् मौसम की प्रतिकूलता से कुछ उसे दिन दो दिन की थकान आयी या सर्दी जुकाम आदि

कुछ प्रतिकूलता हुई तो वह 24 घंटे में या 48 घंटे में ठीक हो जाता है। वह दीर्घकाल तक रोगी नहीं रहता और ऐसे भी व्यक्ति हमने देखे जिन्होंने जीवन में कभी एक टेबलेट भी नहीं खायी जिसके एक इन्जेक्शन भी नहीं लगा और अपनी पूर्ण आयु 75 वर्ष, 80 या 90 वर्ष तक जी। कभी कोई एलोपेथिक दवाई नहीं खाई यहाँ तक कि आयुर्वेदिक औषधि लेने के लिये वैद्य के पास नहीं गये कभी कदाचित् जुकाम की शिकायत हुयी तो कहते हैं आज मैं भोजन नहीं करूँगा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, चलो आज मैं केवल दूध ले लूँगा, आज मैं केवल काढ़ा ले लूँगा इतने से ही वे अपने स्वास्थ्य को ठीक कर लेते थे। तो आरोग्य प्राप्त होना पुण्य का फल है।

आज भारत वर्ष में या विश्व में जितने भी मनुष्य हैं उनमें से पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति खोजें तो मुश्किल है कि 1% व्यक्ति स्वस्थ निकल आये या ½% व्यक्ति स्वस्थ निकल पायें। अन्यथा जिसको भी देखो वही कहता है मैं परेशान हूँ। कैसे परेशान हो, कोई पेट से परेशान तो कोई घुटने के दर्द से परेशान, कोई कमर दर्द से परेशान, कोई कहता है मेरी कमर में दर्द है, कोई कहता है मुझ डाईबिटीज है, थायरॉइड है, कोई कहता है मेरा B.P. High होता है, किसी का B.P. Low होता है किसी को और कोई Problem होती है। वह किसी न किसी रोग का शिकार है। तो ऐसा लगता है वर्तमान पंचम काल थोड़ा हीन पुण्य काल है इसमें सातिशय पुण्यात्मा जीव कम होते चले जा रहे है और हीन पुण्यात्मा जीवों की वृद्धि होती चली जा रही है। आज ग्राम और देहात में स्वस्थ व्यक्तियों का आंकड़ा ज्यादा होगा, बड़े–बड़े शहरों में महानगरों में स्वस्थ व्यक्तियों का आंकड़ा बहुत कम है। मैं तो मानता हूँ आज के युग में जो व्यक्ति एक पैसे की औषधि भी सेवन नहीं करता वह बहुत बड़ा पुण्यात्मा है जिसके शरीर में कोई रोग नहीं है तब वह बहुत बड़ा पुण्यात्मा है। तो यह आरोग्यता भी पुण्य का फल है।

महानुभाव! आगे कहा–**''सन्मित्रं सुसुतं सतीप्रियतमा भक्तिश्च तीर्थंकरेः''** पुण्य के फल के माध्यम से ही अच्छे मित्रों की प्राप्ति होती है जो मित्र स्वयं धर्म के कार्य में लगे और अपने साथियों को भी धर्म के कार्य में संलग्न करें, पापों से बचायें ऐसे मित्र मिलना बड़ा मुश्किल है अन्यथा आप यदि अच्छे हैं तो खराब मित्र आपको घेर लेंगे आपको अपने चंगुल में फंसायेंगे। बुराईयों को आपके जीवन में उत्पन्न करने की कोशिश करेंगे किन्तु जो पुण्यात्मा व्यक्ति है उसे सहज ही अच्छे मित्र मिल जाते हैं। अपने नगर में, दूसरे नगर में पूजा करने वाले, स्वाध्याय करने वाले, साधुओं की सेवा करने वाले, पुण्य कार्य करने वाले, दान करने वाले, सिद्ध क्षेत्रों की यात्रा करने वाले, ऐसे अच्छे मित्र मिलते हैं। पुण्य के उदय से आप भी उसके साथ पुण्य कार्य करने लगते हैं। यदि कोई मित्र तुम्हें पापी मिला जो पाप में, व्यसनों में संलग्न है वह यदि कभी अपराधी सिद्ध होता है, शासन के द्वारा दण्डित होता है तब पुलिस आपको भी खोजती है कि तुम उनकी संगति करते हो तुम भी अपराध में शामिल होंगे। तो पापी मित्र के साथ जो रहता है वह भी पापी ही होता है। तो पुण्य के उदय से ही समीचीन मित्रों की प्राप्ति होती है।

आगे कहा–'सुसुतं' जीवन में श्रेष्ठ कुल दीपक, कुल को उज्ज्वल करने वाले, कुल की कीर्ति को बढ़ाने वाले ऐसे प्रज्ञ, विवेकी एवं सुसंस्कारवान् पुत्र की प्राप्ति भी पुण्य के उदय से होती है। पाप के उदय से संतति वृद्धि तो हो जाती है किन्तु योग्य पुत्र नहीं मिलता। सिंहनी एक पुत्र को जन्म देती है किन्तु एक पुत्र उसका ऐसा होता है जो पूरे जंगल का राजा बनता है। गधी दस बच्चों को भी जन्म दे दे किंतु वे भी साथ में बोझा ही ढोते हैं। कहा भी है–

एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्।
सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी।।

जिस पुत्र को जन्म देकर माता–पिता गौरव का अनुभव करें, अपने सौभाग्य का अनुभव करें निःसंदेह वह पुत्र पुण्यात्मा है और किसी पिता को ऐसे पुत्र की प्राप्ति होना पुण्य का फल है। पुण्यात्मा पिता वह है जिस पुत्र को देखकर के सामने वाले पूछें–महोदय! आपने पूर्व में ऐसा कौन सा पुण्य किया जो आपको ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ है और पुण्यात्मा पुत्र वह है जिससे उसके मित्र पूछें कि आपने ऐसा कौन सा पुण्य कार्य किया जो आपको इतने अच्छे पिता जी मिले, जो समस्त व्यसनों से मुक्त हैं, धार्मिक हैं, समाज सेवा में संलग्न हैं बहुत पुण्यात्मा जीव हैं। तो पुण्यात्मा को पुण्यात्मा की प्राप्ति होती है। कभी उल्टा भी होता है किसी का पिता तो बहुत पुण्यात्मा है किन्तु पुत्र कुलकलंकी हुआ, किसी का पुत्र तो बहुत अच्छा है मंदिर जाता है, स्वाध्याय करता है, पूजाभिषेक करता है, साधु सेवा करता है, आहारादि दान देता है किंतु पिता जी हो सकता है व्यसनी हों। किन्तु ऐसा योग मिलना बहुत पुण्य का उदय है कि पुत्र श्रेष्ठ हो और पिता भी श्रेष्ठ हो। तो यहाँ कहा श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति भी पुण्य का फल है।

'सतीप्रियतमा'–ऐसी स्त्री की प्राप्ति होना जो आपको प्रिय है और उसके लिये आप भी अत्यंत प्रिय हैं। उसका मन आप में रमण करता है और आपका मन उसमें रमण करता हो। आपके चित्त में अपनी स्वकीय पत्नी के अतिरिक्त किसी और के साथ कोई खराब भाव नहीं आता हो या आपकी पत्नी का चित्त तो कभी किसी को देखकर चंचल नहीं होता हो। दोनों धर्म करते हुये संतुष्ट हों। सती स्त्री की प्राप्ति होना यह भी पुण्य का फल है। व्यभिचारिणी स्त्री पाप के उदय से प्राप्त होती है या स्त्री तो मिली किंतु तलाक देकर भाग गयी, या घर का सामान लेकर बांधकर चलती बनी। तो बिना पुण्य के ऐसी स्त्री नहीं मिलती जिसे देखकर आप कहें हे भगवान्। तू बड़ा दयालु है पूर्व में मैंने

कौन सा पुण्य किया जो आज देवी तुल्य जीवन साथी की प्राप्ति हुयी है। तो सती स्त्री की प्राप्ति जो अपने पति को धर्म मार्ग पर प्रेरित करे, धर्म में सहयोगी बने, विपत्ति में आगे–आगे रहे और सम्पत्ति व अनुकूलता में पीछे–पीछे गमन करे। सीता जैसी यदि सती स्त्री प्राप्त हुयी है तो निःसंदेह मानिये आपके बहुत पुण्य का उदय है।

आगे कहते हैं ''भक्तिश्च तीर्थंकरे'' यदि आपका मन तीर्थंकर प्रभु के पाद पद्मों की सेवा करने में संलग्न है तब निःसंदेह मानिये आपका बड़ा पुण्य का उदय है। अन्यथा व्यक्ति कहता है मेरा मंदिर में मन नहीं लगता, मेरा पूजा–पाठ–जाप में मन नहीं लगता। जबरदस्ती चला जाता हूँ, दो मिनट में लौटकर आ जाता हूँ, बाहर बैठ जाता हूँ वहाँ बैठकर गप्प लगाता रहता हूँ। व्यक्ति घंटों व्यर्थ की बाते तो कर सकता है पर मंदिर में 5 मिनट भी निराकुलता से नहीं बैठ सकता। एक व्यक्ति ऐसा है जो मंदिर में जाता है और 1–2 घंटे तक आराम से पूजाभिषेक शांतिधारा करने में, जाप लगाने में, स्वाध्याय करने में आंनद ले रहा है, उसे समय का पता ही नहीं चल रहा। तो जिसका मन प्रभु भक्ति में लग रहा है समझो वह पुण्यात्मा जीव है।

पाप के उदय में मन तीर्थंकर प्रभु की भक्ति नहीं कर पाता, वह पंचपरमेष्ठी की भक्ति, उनकी स्तुति–वंदना नहीं कर पाता। पाप कर्म के उदय से उसका मन सांसारिक कार्यों में लगता है। कई ऐसे व्यक्ति भी देखे जो कहते हैं–भाई हमसे घर का काम तो चाहे कितना भी करवा लें पर मंदिर में मन नहीं लगता। एक कहता है मेरा मंदिर में मन लगता है घर के कार्यों में मन नहीं लगता। जिसका मन मंदिर में, तीर्थंकर की भक्ति में लगता है निःसंदेह वह बहुत पुण्यात्मा जीव है।

''विद्वत्तं स्वजनत्व–मिन्द्रियजयं सत्पात्रदाने रतिं

'विद्वत्तं'–पुण्य के उदय से ही ज्ञान का क्षयोपशम वृद्धि को प्राप्त होता है अन्यथा ज्ञानावरणी कर्म तो पाप प्रकृति है। उसके उदय से तो व्यक्ति याद किया भी भूल जाता है। पुण्य के उदय से दो–चार बार पढ़ा याद हो गया। पुण्य के उदय से व्यक्ति का क्षयोपशम ऐसा होता है कि एक बार बचपन में कोई चीज याद की थी और वह आज तक याद है। पाप के उदय से कई बार पढ़ता है–कई बार पढ़ता है फिर भी उसे याद नहीं कर पाता तो विद्वत्ता की प्राप्ति पुण्य का फल है। 'सुजनत्वं' सज्जनता की प्राप्ति। किसी–किसी में सहज ही सज्जनता होती है वह सहज ही विनम्र परोपकारी कृतज्ञ, भक्त होता है क्षमादि गुण होते हैं वह क्रोधादि नहीं करता, लोभ–लालच भी नहीं करता, छल–कपट भी नहीं करता, तो ऐसी सज्जनता अपने अंदर–माना पुण्य का फल है।

इसके साथ–साथ 'इन्द्रिय जय' जो कोई व्यक्ति अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण कर पाता हैं। इंद्रियों को जीतने में समर्थ होता है तो यह भी उसके पुण्य का फल है, बिना पुण्य के फल के विद्व त्ता प्राप्त नहीं होती, सज्जनता प्राप्त नहीं होती, इंद्रियजय शीलादि व्रतों का पालन करने में समर्थ नहीं होता। आचार्यों ने लिखा है उस व्यक्ति को उपरोक्त गुण पुण्य के बिना प्राप्त नहीं हो पाते हैं क्योंकि व्यक्ति सोचे मुझे वैभव प्राप्त हुआ, धन सम्पत्ति प्राप्त हुयी तो वह पुण्य का फल हो गया, नहीं उस धन सम्पत्ति का सदुपयोग कर पाना पुण्य का फल है। तुलसीदास जी ने लिखा–

संत समागम हरि भजन तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत दारा और लक्ष्मी पापी के भी होय।।

यदि केवल स्त्री, पुत्र और धन की प्राप्ति है तो वह पापी जीव के भी हो सकता है, पुण्यात्मा जीव कुल दीपक रूप सुत को प्राप्त करता है, अच्छी स्त्री को प्राप्त करता है और लक्ष्मी का

सदुपयोग करता है। अपने मन, वचनश काय का सदुपयोग करता है। इस प्रकार पुण्य के बारे में कहा। मनुष्य भव, श्रेष्ठ कुल में जन्म, पुण्य में संलग्न वैभव, दीर्घायु, आरोग्यता, अच्छे मित्रों की प्राप्ति, श्रेष्ठ पुत्रों की प्राप्ति, सती स्त्री की प्राप्ति, तीर्थंकर प्रभु में भक्ति करना, विद्वता, सज्जनता, इंद्रिय जय और सत्पात्रों में दान देना यह सब पुण्य के फल हैं। संसारी प्राणियों को ये पुण्य फल बिना पुण्य के दुर्लभ हैं। आप सभी पुण्य कार्य में संलग्न रहो और पुण्य कार्य के माध्यम से पुण्य फलों को प्राप्त करते हुये अपनी आत्मा का कल्याण कर सको ऐसी हम आप सभी के प्रति मंगल भावना भाते हैं। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

महापुरूष

संसार में सब प्रकार के वृक्ष हैं, सब प्रकार के पशु–पक्षी हैं, सब प्रकार के पाषाण हैं और अनेक प्रकार का जल है, अनेक प्रकार की मिट्टी है। पशुओं की जाति अलग अलग है एक गाय है दूसरा श्वान भी है, एक गधा है दूसरा घोड़ा भी है। एक भालू है दूसरा पालतू अन्य जानवर। ऐसे ही एक वृक्ष पीपल है तो दूसरा चंदन वृक्ष भी है, एक नीम का पेड़ है दूसरा आम का भी है। यदि कोई बेर का झाड़ है तो दूसरा सेब–अनार के भी हैं। इस वसुधा पर अनेक प्रकार के पक्षी हैं कोई चील और गिद्ध है तो मयूर और तोता भी हैं यदि कोई भारूंडा जैसे हिंसक पक्षी हैं तो हंस जैसे मोती चुगने वाले भी हैं। कोई चिड़िया है तो कोई कबूतर है सब प्रकार के पक्षी सबकी प्रकृति अलग–अलग है। धवलवर्ण वाले बगुला भी हैं। जो पाप से युक्त हैं, श्याम वर्ण वाली कोयल भी है जो कि कथंचित् पुण्य से युक्त है। यदि धवल वर्ण वाला खारी नमक है तो धवल वर्ण वाला मिशरी का टुकड़ा भी है।

छाछ भी मिल जाती है तो दूध भी मिल जाता है, किसी को घृत व मलाई भी मिलती है, तो किसी को छाछ भी उपलब्ध नहीं होता। मिट्टी कहीं उर्वरा है तो कहीं ऊसर भूमि भी है, कोई पाषाण ऐसा है जो किसी भी काम में नहीं आ सकता, न इमारत बनाने के काम, न मूर्ति बनाने के काम तो कुछ ऐसे पाषाण हैं जिनसे मूर्ति बनायी जा सकती हैं। कुछ कंकड़–पत्थर हैं जो मनुष्य के पैर में चुभ सकते हैं तो कुछ ऐसे रत्न भी है जिन्हें प्राप्त कर मनुष्य अपने आपको निहाल समझता है। अनेक प्रकार की धातु है लोहा है तो सोना भी है, पीतल है तो चांदी भी है सब प्रकार की अनुकूलता–प्रतिकूलता है। कहीं खारा जल है तो कहीं मीठा जल है, प्रकृति में कहीं धूप है तो कहीं छाया भी है, कहीं शीत

है तो कहीं ऊष्ण भी है, कहीं बारिश है तो कहीं सूखा भी है। संसार में अनेक प्रकार के पदार्थ हैं।

इसी प्रकार संसार में अनेक प्रकार के मनुष्य भी है। कुछ ऐसे मनुष्य भी हैं जिन्हें कह सकते हैं कि वे युग पुरुष है, महापुरुष है, महात्मा पुरुष, सज्जन–संत पुरुष हैं मानवता के संवाहक हैं, धर्म के आधार हैं, समाज के स्तम्भ हैं। तो दूसरी ओर ऐसे भी मनुष्य हैं जो मानवता का घात करने वाले हैं, समाज का पतन करने वाले हैं। सुसंस्कारों का ह्रास करने वाले हैं, शिष्टता–सभ्यता की चादर को छिन्न–भिन्न करने वाले हैं। ऐसे भी हैं जिनसे वसुधा कलंकित है जो वसुधा के लिये अभिशाप हैं तो कुछ ऐसे हैं जो वरदान स्वरूप हैं।

प्रत्येक काल में अच्छे–बुरे व्यक्तियों का अभाव नहीं हुआ। महीना कोई भी हो, प्रत्येक माह में पक्ष दो ही होते हैं कृष्ण और शुक्ल। एक पक्ष में चन्द्रमा घटता हुआ रहता है दूसरे पक्ष में चन्द्रमा बढ़ता हुआ रहता है ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी महीने में चन्द्रमा पूरे माह बढ़ता ही रहे या किसी पूरे महीने में घटता–घटता ही रहे। ऐसा कभी नहीं हुआ कि रात्रि में भी सूर्य का प्रकाश बना रहा हो और ऐसा भी नहीं हुआ कि दिन में ही रात्रि रही हो, चाहे भले ही कदाचित् कुछ समय के लिये बादल सूर्य को दबा लें, बादल सूर्य के अस्तित्व को नष्ट नहीं कर सकते। प्रत्येक काल में पुण्यात्मा पुरुष भी होते रहे हैं और पापी जीव भी। यदि रामचन्द्र जी जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम व्यक्ति रहे हैं तो रावण जैसे परनारी का हरण करने वाले भी रहे हैं। यदि न्याय के पक्ष में चलने वाले पाण्डव रहे हैं तो अन्याय से राज्य को हरण करने के लिये लोभी कौरव भी रहे है। यदि कंस हुआ तो परोपकार में संलग्न श्रीकृष्ण भी हुये, यदि कमठ हुआ तो पार्श्वनाथ स्वामी भी हुये, यदि सात्यकिपुत्र हुआ तो भगवान् महावीर भी हुये।

कोई भी काल ऐसा नहीं जिस काल में अच्छाई बुराई न रही हो, अच्छाई–बुराई कभी घटती है कभी बढ़ती है। कोई भी नदी ऐसी नहीं जो सिर्फ एक किनारे से बहे, उसके दो किनारे जरूर होते हैं ऐसे ही अच्छाई बुराई का मिश्र नाम ही संसार है। जो सज्जन पुरुष हैं उन भले आदमी के भाल पर चन्द्रमा नहीं बना होता या उस भले आदमी के मुख से बोलते समय मोती नहीं झरते या भले आदमी के कर में कमल के फूल नहीं खिलते, भले आदमी के पैर रखने से चंदन पैदा नहीं होते या रत्न नहीं बन जाते किन्तु भलाई से व्यक्ति भला आदमी होता है और बुराई से व्यक्ति बुरा होता है। बुरा आदमी वह नहीं जिसके सिर पर काँटों का ताज हो, जिसके हाथ में अग्नि की ज्वाला निकल रही हो, या बुरा आदमी वह नहीं जिसके पैर से जहर टपकता हो अपितु उसके व्यक्तित्व से अच्छे–बुरे की पहचान होती है। बुरे आदमी की मन–वचन–काय की प्रवृत्ति अशिष्ट, असभ्य, अशुभ निंद्य और परदुःख कारण होती है व स्वयं के लिये भी दुःखद होती है। भले आदमी की मन–वचन–काय की प्रवृत्ति शुभ–शिष्ट–सभ्य होती है, उसे स्वयं भी अपने जीवन से सुख शांति का अनुभव होता है, दूसरे भी उसकी संगति से सुख–शांति का अनुभव करने में समर्थ होते हैं।

महानुभाव! यहाँ पर संकेत कर रहे हैं कि महापुरूष में कौन–कौन से लक्षण होते हैं? वैसे तो उनमें बहुत सारी अच्छाईयाँ होती हैं, समुद्र में कितना नीर है कौन नाप सकता है, चन्द्रमा में कितनी चांदनी है कौन नाप सकता है? पुष्प में कितनी सुगंध है कौन नाप सकता है? मिशरी में कितनी मिठास है कौन नाप सकता है। शीतल जल में कितनी शीतलता है कोई नाप नहीं सकता, आकाश के तारे गिने नहीं जा सकते, इसी प्रकार महापुरुष के गुणों को भी गिन नहीं सकते। बुरे पुरुष भी होते हैं तालाब में

जो गंदगी है, वह गंदगी कितनी बदबू दे रही है नाप नहीं सकते, सड़े पदार्थ कितने पदार्थों को सड़ा सकते हैं ये नाप नहीं सकते। तो बुरे व्यक्तियों में कितनी बुराईयाँ हैं, कितने दोष हैं इसे कोई भी जान सकने में समर्थ नहीं है। अच्छाई–बुराई साथ–साथ चलती है। फिर भी कुछ लक्षण ऐसे हैं जिनसे हम अच्छे–बुरे व्यक्ति की पहचान कर सकते हैं। लक्षण बताते हुये कहा है–

यः परवादे मूकः, परनारी वक्त्रवीक्षणेऽपि अंधः।
पंगु परधनहरणे, स जयति लोके महापुरुषः।।

'यः परवादे मूकः' महापुरूष वह है जिसके श्री मुख से सदा दूसरों की प्रशंसा निकलती है, महापुरूष वह है जिसके वचनों को सुनने के लिये सज्जन पुरूष सदा लालायित रहते हैं, महापुरूष वह है जो प्रायःकर के अपने दोषों का कथन करता है, गुणों की प्रशंसा नहीं करता, महापुरूष वह है जिसके श्री मुख से प्रायःकर के धर्म के शब्द निकलते हैं। ऊँ, नमः, स्वाहा और जय ऐसे उत्तम शब्द निकलते हैं। प्रातःकाल से ही सबसे कहता है 'जयजिनेन्द्र', जयश्रीराम, जय महावीर, जयऋषभदेव, या जय सिंह परमेष्टी उसके मुख से भगवान् के लिये जय निकलता है। अचानक से निकलता है, सोते–सोते भी भगवान् की जय उच्चरित हो जाती है, मुनिराज की जय बोलता है।

अथवा स्वप्न में भी णमोकार मंत्र बोल रहा है, नमः सिद्धेभ्यः, अर्हदेभ्यो नमः, नमः पाठकेभ्यः, नमः सर्वसाधुभ्यः, जिनबिंबेभ्यो नमः, जिनालयेभ्यो नमः, नमः शब्द ही निकलता है। कई बार लोगों ने बताया हम णमोकार मंत्र पढ़ते–पढ़ते सो जाते हैं तो हमारी अंगुली वहीं की वहीं रह जाती है। णमो अरिहंताणं पर नींद लगी तो पूरी रात बस वही णमो अरिहंताणं–णमो अरिहंताणं ही चलता रहता है। या जिस पद पर नींद लगी वही पद वाक्य का संस्कार चलता रहता है। नींद खुलती है तो मुँह से वही निकलता है और

अंगुली भी नहीं हिलती। वह महापुरूष अपने श्री मुख से जब भी यज्ञ–हवन आहूती करता है पूजा–अर्चना विधान आदि करता है, पवित्र सामग्री को लेकर जब अर्पण करता है तब 'स्वाहा' शब्द बोलता है। जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा, संसारताप विनाशनाय चंदंन निर्वपामीति स्वाहा, अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीती स्वाहा, कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा, क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा, मोहांधकार–विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा, अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा, मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा, अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा। यह 'स्वाहा' शब्द उसके मुख से निकलता है।

जिसके मुख से जय नमः, स्वाहा शब्द निकले वह पुण्यात्मा है। इसके साथ–साथ पुण्यात्मा महापुरुष वह है जिसके श्री मुख से 'ओम्' शब्द निकलता है। किसी भी मंत्र को पढ़ता है तो ऊँ का उच्चारण होता है अथवा चलते फिरते ऊँ नमः, जय श्री ऊँ नमः सिद्धेभ्यः, या कभी अर्घ चढ़ाया तब भी ऊँ ह्रीं आदि शब्द निकलते हैं। तो ये चार शब्द जिसके मुख से निकलते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है। तथा 'परवादेमूकः' दूसरों की निंदा करते समय गूंगा अर्थात् शब्द रहित है। महापुरूष वह है मानो दूसरों की निंदा करने में जिसकी जिह्वा में कोई लकवा लग गया हो। उसके मुख से दूसरों के लिये दोष नहीं निकल सकते वह जिह्वा दूसरों के दोष कहने में हिल नहीं सकती, उससे प्रशंसा चाहे कितनी भी करा लो।

महापुरुष का दूसरा लक्षण बताते हैं ''परनारी वक्त्र वीक्षणेऽपि अंधः'' पर नारी के अंग उपांग को निरखने में वह अंधा है। वह पर नारी को विकृत दृष्टि से देख नहीं सकता कहता है, मैं अंधा हूँ। यदि कोई पर नारी समाने आ जाए तो अपने आप को

अंधा कर लेता है। वह गुण ग्राहक होता है उसकी दृष्टि सदैव गुणों पर होती है, उसके नेत्र चाहे बंद हों या खुले, परमात्मा की मूर्ति को साक्षात् देखता है, उसकी दृष्टि निर्दोष और निर्मल होती है। आप पढ़ते हैं–

'महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे'

भगवान् महावीर स्वामी मेरे नयनों के पथगामी बनें। जब भी नेत्र खोलूँ मुझे महावीर स्वामी दिखाई दें, जब भी नेत्रों को बंद करूँ तो महावीर स्वामी दिखाई दें। भक्त लोग पढ़ते हैं–

'आँखे बंद करूँ या खोलूँ, बाबा दर्शन दे देना' भक्तों को तो आँख बंद करने पर भी भगवान् दिखाई देते हैं, आँख खोलते हैं तब भी भक्तों को भगवान् दिखाई देते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि उनके गुरू–प्रभु सदैव उनकी आँखों के समक्ष ही है। महापुरुष जो होता है वह दूसरों के दोषों को देखने में अंधा हो जाता है। वह परनारी के अंगों का वीक्षण करने में अथवा जिससे काम वासना विकार जाग्रत हों उसको देखने में अंधा बन जाता है। वह तो अपनी आँखों को बंद कर लेता है, कहीं उपसर्ग आ जाये तो आँख बंद करके प्रभु परमात्मा का स्मरण करता है, कहीं कोई विकृत चित्र सामने आ जाये तो अपनी दृष्टि को मोड़ लेता है।

आगे कहा–'पंगु परधनहरणे' जो महापुरुष है वह दूसरों का धन अपहरण करने के लिये पंगु हो जाता है, दूसरों को कष्ट देने की बात आये तो वह चल नहीं सकता, किसी बुरे कृत्य के लिये, सप्त व्यसनों के लिये उसके पग गमन करने में समर्थ नहीं होते, वह कहता है लगता है मेरे पैर हैं ही नहीं। वह पाप करने के लिये ऐसा समझता है कि मैं पैरों से विहीन हूँ, पंगु हो गया हूँ। जो पैर मुझे पाप की ओर ले जायें ऐसे पैर मुझे नहीं चाहिये। महापुरुष के पैर हिंसा के लिये गमन नहीं करते, असत्य का पोषण करने

के लिये गमन नहीं करते, चोरी करने के लिये गमन नहीं करते। पर स्त्री, परधन का हरण करने के लिये गमन नहीं करते, किसी को दुःखों के गर्त में डालने के लिये गमन नहीं करते, किसी का सुख छीनने के लिये पैर गमन नहीं करते।

उसके पैर गमन करते हैं तीर्थ यात्रा के लिये, दूसरों का सहयोग करने के लिये, अहिंसा का पोषण करने के लिये, ईमानदारी के लिये, संतोष के लिये व धर्म की रक्षा के लिये। अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये, स्व–पर की मान मर्यादा की रक्षा करने के लिये, कुल की रक्षा करने के लिये वह अपने पैरों का सदुपयोग करता है और ऐसा सदुपयोग करता है कि पैरों में शक्ति क्षीण भी हो गयी हो तब भी न जाने कैसे शक्ति आ जाती है। जहाँ चार कदम चलने की शक्ति नहीं थी जब सम्मेद शिखर की यात्रा करने के लिये जाता है तब 27 कि.मी. पर्वत की वंदना कैसे कर लेता है, नेमिनाथप्रभु की मोक्षस्थली की वंदना कैसे कर लेता है, सर्व निर्वाण क्षेत्रों की यात्रा वह अपने पैरों से कर लेता है क्योंकि वह महापुरुष है उसके पैर पुण्य के कार्य में गतिशील होते हैं, पाप के कार्य में गतिशील नहीं होते।

उपरोक्त गुणों से युक्त जो है उसके लिये कहा 'स जयति लोके महापुरुषः' वही व्यक्ति ही लोक में विजित महापुरुष होता है वही वास्तव में पापों को जीतने में, शत्रुओं को जीतने में अंतरंग के कामविकार आदि शत्रुओं को, कर्मों को जीतने में समर्थ होता है, आचार्य कहते हैं वही वास्तव में महापुरूष है। जिसकी ऐसी प्रवृत्ति होती है वही महापुरूष हो सकता है। मन वचन काय की शुभप्रवृत्ति, स्व–पर कल्याण रूप भावना से ओतप्रोत व्यक्तित्व का धनी ही महापुरुष है वही अधिक से अधिक प्राणियों का हित कर सकता है और वह अधम पुरूष होता है जो स्व–पर का अहित करता है।

आप भी अपने मन–वचन काय का सदुपयोग करें, अपनी आत्मा का कल्याण करें, दूसरों के कल्याण में निमित्त बनें ऐसी मंगलभावना आप सभी के प्रति भाते हैं। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

पण्डित कौन?

संसार में जितने भी पदार्थ हैं उन सभी का स्वभाव स्वरूप और लक्षण पृथक–पृथक है। किसी वस्तु का लक्षण किसी को अच्छा लगता है तो किसी व्यक्ति को वही लक्षण प्रतिकूल लगता है। किसी का स्वभाव किसी को अच्छा लगता है तो अन्य का स्वभाव किसी अन्य को अच्छा नहीं लगता है। ऐसा नहीं होता कि संसार में सबको सब कुछ अच्छा लगे या सबको सब कुछ बुरा लगे। क्योंकि संसारी प्राणियों के जो कर्म का उदय होता है उस कर्म के उदय से एक वस्तु जो अच्छी लग रही है वह एक समय तक अच्छी लग रही है, कुछ समय के बाद उसी से विरक्ति होने लगती है। और जिससे आज विरक्ति है कुछ समय के बाद उसी की मन में इच्छा पैदा होने लगती है। चाहे भोग सामग्री है चाहे उपभोग सामग्री है। आप लोग भोजन नित्य करते हैं किन्तु नित्य–नित्य आप अपने भोजन में dishes change करते रहते हैं क्योंकि आपका मन भी हमेशा एक चीज को नहीं चाहता, उससे भी ऊबने लगता है, दूसरे की इच्छा करने लगता है। आप कभी वस्त्रों को बदलते हैं तो धनाढ्य व्यक्ति वाहनों को बदलता है, आभूषण बदलता है अब ये नहीं अच्छे लग रहे, दूसरे ले लेता है। व्यक्ति का मन एक जैसा नहीं रहता। यह मन जलाशय में उठने वाली तरंगों की तरह से बदलता रहता है यह स्थायी नहीं है, कूटस्थ नहीं है।

वस्तुओं का स्वभाव स्थायी है, उनके गुण स्थायी है, चाहे कोई भी कार्य हो, कोई भी क्षेत्र हो, अग्नि का स्वभाव ऊष्णता है जलाना है, जलाना नहीं छोड़ती। पानी का स्वभाव नीचे की ओर बहना है वह सहजता में नीचे की ओर ही बहता है या शीतलता उसका स्वभाव है वह नष्ट नहीं होता। हवा का स्वभाव बहना है

तो कूटस्थ रहकर एक जगह नहीं रहती। पुष्पों का स्वभाव सुगंध देना है, इक्षुदण्ड का स्वभाव मधुरता देना है वह देते हैं। किन्तु मनुष्य अपने स्वभाव से भटक कर विभाव में आ गया स्वभाव को प्राप्त हुये अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी स्वभाव में लीन रहते हैं वे कभी उससे विरक्त नहीं होते च्युत नहीं होते उसमें ही अनंतकाल के लिये। लीन है अरिहंत परमेष्ठी जिन्होंने चार घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया वे भी लीन हैं, आयु कर्म के पूर्ण होते–होते तीन अघातिया कर्म भी नष्ट होते हैं।

किन्तु सामान्य संसारी प्राणी एक विषय में स्थिर नहीं हो पाता। उसका मन–'पीपल पात सरस मन डोला' पीपल के पत्ते की तरह डोलता रहता है या हाथी के कान की तरह से चंचल होता है, या जल में मछली की तरह से चंचल होता है तो वह स्थिर हो नहीं पाता।

कोई भी व्यक्ति आज जो वस्तु मांग रहा है यदि उसे वह वस्तु उसकी मांग से ज्यादा–ज्यादा देते जाओ, तो वह उससे ऊब जायेगा। माना किसी वस्तु को मोदक अच्छे लगते हैं, उसने मोदक ग्रहण किये और खाने लगा, उसके हिस्से में एक मोदक आया उसकी निगाह दूसरे मोदक पर है कदाचित् दूसरा भी दे दिया तो तीसरा चाहता है, फिर चौथा चाहता है, उसे अगर प्रतिदिन मोदक मिले तो रुचि थोड़ी कम होती है। या उसे जबरन पकड़कर के मोदक खिलाना शुरू कर दिया तो 5–6 खाकर कह देगा अब नहीं! इससे ज्यादा नहीं खा सकता। पुनः उससे कहा नहीं और खाओ और खाओ। वह कहेगा भाई मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ मुझसे गलती हो गयी, अब तो मैं इसे देख भी नहीं सकता हूँ।

चाहे कोई भी चीज जिसे वह बार–बार देखता था, चोरी से छिपकर देखता था और जब वही वस्तु प्राप्त हो गयी तो

उसकी ओर अब दृष्टि नहीं करता। उपभोग की वस्तु है, जो वस्तु आपको चाहिये थी मिल गयी किंतु अब न चाहिये, कोई देता है तब भी नहीं चाहिये। पहले मन में भाव था कैसे भी मिले, चोरी से मिले, मांगकर लाऊँ या छीनकर ले आऊँ उसके बिना मैं एक क्षण भी जी नहीं सकता और जब दीर्घकाल के लिये मिल जाये तो अब उसके साथ जी नहीं सकता। इस संसारी प्राणी का बड़ा विचित्र स्वभाव है, यह स्वभाव नहीं विभाव है। वैभाविक परिणति में बार–बार परिवर्तन आता है।

आप लोग स्वयं अपने वस्त्राभूषण के बारे में जानते हैं। किसी महिला को कोई विशिष्ट साड़ी मिल जाये और उससे कहा जाये वह उसे रोज–रोज पहने, वह कहेगी अब मैं इसे नहीं पहनूँगी, इससे मेरा जी भर गया। आभूषण भी हो जब नहीं थे तब इन्हें प्राप्त होने की बहुत लालसा थी किन्तु जब प्राप्त हो गये तब कोई लालसा नहीं, उतार कर रख देती है कहती है मुझे ये अब सुहाते नहीं हैं। दूसरे नये नहीं मिले तो कोई बात नहीं पर ये नहीं चाहिये। तो ये संसारी प्राणी का जी ऐसा ही है जो बहुत जल्दी भर जाता है और बहुत जल्दी खाली हो जाता है। आचार्य महोदय कह रहे हैं भाई! इस प्रकार अपने जी को चंचल मत करो, संसार में पदार्थ हैं तो अपने स्वभाव में लीन है उस स्वभाव को तुम अन्यथा नहीं कर सकते, तुम चाहो कि पुद्गल का जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, स्वभाव है, मूर्तपना, अचेतनत्व है उसको तुम कैसे बदल सकते हो। जीव का चेतना लक्षण है, उसका स्वभाव ज्ञानदर्शन उपयोग है उसे कैसे बदल सकते हैं। कोई किसी को परिवर्तित नहीं कर सकता है।

महानुभाव! आचार्यों ने कहा संसार में दो प्रकार के प्राणी होते हैं एक वे होते हैं जो वस्तु के स्वरूप को जानकर के उसमें रागद्वेष नहीं करते, एक प्राणी वे होते हैं जो वस्तु के स्वरूप

को जानकर भी अनजान बने रहते हैं और चाहते हैं वस्तु का परिणमन हमारे अनुसार हो। किन्तु किसी वस्तुओं का परिणमन हमारे अनुसार होना कोई जरूरी तो नहीं है। जिसका जैसा परिणमन है वैसा ही होगा। कोई व्यक्ति सोचे सूर्य में से चन्द्रमा जैसी शीतलता निकले वह कैसे हो सकता है। चन्द्रमा में से भी ऊष्णता निकलकर आये तो सर्दियों में आनंद आ जाये, तो क्या ऐसा हो सकता है। घर में पिता चाहता है कि बेटा मेरे अनुसार चले, किंतु बेटा भी चाहता है पिता जी मेरे अनुसार चलें किन्तु ऐसा हो सकता है क्या? सबका अपना–अपना मन्तव्य होता है, ध ाारणायें होती हैं परिणतियाँ होती हैं। घर में सास चाहती है बहू मेरे हिसाब से चले, बहू सोचती है सास जैसे में चाहूँ वैसे चले यही द्वन्द का कारण बन जाता है।

हम एक–दूसरे को अपने अनुसार चलाना चाहते हैं। खुद भी अपने अनुसार चल नहीं पा रहे हैं। खुद कहते हैं मैं चाहता तो हूँ ऐसा कर लूँ, ऐसा नहीं करूँ किन्तु मुझसे होता नहीं है, मुझसे ये गलत काम छूटता नहीं है। अथवा पूजा–पाठ अभिषेक के लिये मैं सुबह–सुबह उठ नहीं पाता, स्वाध्याय में मुझे नींद आती है। मैं चाहता हूँ नगर में साधु हैं उनकी वैय्यावृत्ति करने जाऊँ पर मैं जा नहीं पाता, मैं चाहता हूँ अन्य पाप संबंधी कार्य न करूँ, क्रोध न करूँ, अहंकार का पोषण न करूँ, मायाचारी लोभ से बचा रहूँ, हिंसादि कार्यों में प्रवृत्ति न करूँ पर मेरे यह कृत्य छूट नहीं पाते।

महानुभाव! जब व्यक्ति अपने आप को अपने अनुसार चलाना चाहे तब भी चला नहीं पा रहा है तब दूसरों को अपने अनुसार चलाने का भाव क्यों रखता है। संसार के सभी द्रव्यों का परिणमन स्वतंत्र है, परिणमन किसी के आधीन नहीं है जिसमें जैसा परिणमन हो रहा है उस परिणमन से अपने परिणमन को सुधार लो, अपने

परिणाम सुधार लो। बाह्य वस्तुओं का परिणमन तो चलता रहेगा उसको देखकर अपने परिणाम मत बिगाड़ो। यही विद्वान् और मूर्ख में अंतर होता है। पण्डित कौन होता है तो बताया है–

नष्टं मृतमतिक्रान्तं नानुशो चन्ति पण्डिताः।
पण्डितानां च मूर्खाणां विशेषाऽयं यतः स्मृतः।।

पण्डित में विशेषता है 'न अनुशोचन्ति' वे शोक नहीं करते। किसका शोक नहीं करते? जो वस्तु नष्ट हो गयी हो, पुनः जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो गये उनका शोक नहीं करते, 'अतिक्रांन्तं' जिसकी पर्याय निकल चुकी है, आगे निकल गये, पीछे रह गयी वस्तु हमसे छूट गयी है तो उसका शोक नहीं करते। पंडित–विद्वान् जन शोक विहीन होते हैं किन्तु मूर्ख शोक करते हैं। मूर्ख कौन है एक दृष्टांत द्वारा बताते हैं। राजा भोज के दरबार में एक विद्वान् थे। एक दिन उन्होंने राजा भोज की किसी गलत आदत को देखकर के उनसे कह दिया **''देवानां प्रियः''** किन्तु राजा भोज ने समझा कि ''देवानां प्रियः'' कोई अच्छी बात होगी, उनकी रानी उनसे कई बार देवानां प्रियः कहती, राजा को लगता ये मेरे लिये बहुत अच्छी बात बोल रही है। एक दिन राजा ने मंत्री से भी कह दिया–आओ देवानां प्रियः। किंतु मंत्री को बड़ा खराब लगा। देवानां प्रियः का अर्थ तो **''मूर्ख''** होता है उसे खराब लगा तो उसने एक श्लोक के माध्यम से राजा से कहा।

खादान्न गच्छामि हसन्न भाषेत, गतं न शोचामियं कृतं न मन्ये।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्, किं कारणं भोज भवामि मूर्खः

मैं चलता–चलता खाता नहीं। उस समय Buffer system नहीं चलता था पालथी लगाकर जमीन पर बैठकर व्यक्ति निराकुलता से भोजन किया जाता था, तो मंत्री ने कहा मैंने कभी चलते–चलते भोजन तो दूर पानी भी नहीं पीया, जब भी

खाता–पीता हूँ तो बैठकर खाता–पीता हूँ और मान्यवर राजा भोज! ''हसन्न भाषे'' जब मैं हँसता हूँ तब बोलता नहीं, जब बोलता हूँ तब हँसता नहीं हूँ बोलता हूँ तब गंभीरता से बोलता हूँ, और हँसता हूँ तो अच्छे से हँसता हूँ। 'गतं न शोचामि जो बात बीत गयी उस पर शोक नहीं करता हूँ, गयी सो गयी, बांध कर नहीं चलता, जो रात गयी वह बात गयी। ''कृंत नमंन्ये'': जो मैंने किसी के साथ उपकार किया है। कभी उसे मैं अपने मुंह से कहता नहीं कि मैंने तेरे ऊपर उपकार किया है। और जब दो व्यक्ति बात कर रहे हों तो मैं कभी उनकी चर्चा के मध्य नहीं बोलता, किसी की बात नहीं काटता। हे राजा भोज! आपने मुझे मूर्ख क्यों कह दिया। मैंने कौन सी मूर्खता का काम किया है।

महानुभाव! तो यह मूर्ख लोगों की विशेषता है कि वे नष्ट वस्तु का शोक नहीं करते, मृत जीव के लिये शोक नहीं करते अरे! जब जीव शरीर छोड़कर चला ही गया तो अब शोक क्या करना, क्या वह दिवंगत आत्मा अब लौटकर आयेगी। आत्मा चाहे स्वर्ग में गयी या नरक में, किसी के रोने से आत्मा लौटकर तो नहीं आयेगी। तो यहाँ कह रहे हैं कि जो वस्तु पर्यायों के पार पहुँच गयी, कभी वस्तु वह थी, या अभी उत्पन्न नहीं हुयी है उसे प्राप्त करने के लिये शोकाकुल बैठे हुये हैं तो मूर्ख ही ऐसा कर सकते हैं। जो बद्धिमान है वह कभी इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं करते, क्योंकि विद्वान् लोग जानते हैं इस वस्तु का स्वभाव नष्ट होना ही था, वह नष्ट होनी थी तो हो गयी। जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होना था वह मृत्यु को प्राप्त हो गया, अब रोने से क्या, ठीक है अगर समाधिपूर्वक मरण होता तो खुशी होती, परंतु अब ठीक है, जैसे भी मृत्यु को प्राप्त हो गया तो उसका भी शोक करने से क्या लाभ?

जो अतिक्रान्त अर्थात पर्यायों के पार है उसके बारे में भी सोचने से क्या लाभ है। जो काम तुम कर ही नहीं सकते। जो असंभव है उसके बारे में सोचने से क्या लाभ? आप कहो आकाश से तारे तोड़कर ले आऊँ, जब कर नहीं सकते तो क्यों सोच रहे हो या और भी ऐसा कोई असंभव कार्य है तो उसे करने की क्यों सोच रहे हो। तो जो नहीं कर सकते उसमें भी शोक क्यों? विद्वान् लोग शोक नहीं करते, वे सोचते हैं जो हुआ सो ठीक हुआ।

एक राजा के दरबार में कहीं उपहार स्वरूप कई गमले आये थे, लगभग 60 गमले थे। राजा ने पहरेदारों से कहा मुझे ये गमले बहुत प्रिय है। तुम इनका ध्यान रखना कहीं कोई टूट नहीं जाये। यदि गमला टूट गया तो तुम्हें मृत्यु दण्ड मिलेगा। अब उन गमलों की बहुत सुरक्षा होने लगी। एक दिन किसी सैनिक से कोई गमला टूट गया, राजा ने पूर्व संकेतानुसार सभा में घोषणा कर दी कि इसे मृत्यु दण्ड दिया जाये। अब क्या, कोई रोकने वाला नहीं। सैनिक से पूछा–क्या तुम्हारी कोई अंतिम इच्छा है! मैं नहीं चाहता तुझे मृत्युदण्ड दूँ किन्तु पहले ही घोषणा हो चुकी है। इसलिये मृत्युदण्ड को मैं टाल भी नहीं सकता।

सैनिक ने कहा थोड़ा सा समय दे दीजिये। वह महल में गया और सारे गमले तोड़ दिये। राजा कुपित हुआ, तूने ऐसा क्यों किया? वह बोला महाराज! मैं नहीं चाहता कि मेरे पीछे 59 लोगों को और फाँसी मिले और दूसरी बात ये गमला आण मुझसे भूल से टूट गया कल अगर आप से टूट गया तो? आप फाँसी पर लटक गये तो राज्य का क्या होगा। इसलिये अब मुझे फाँसी देना है तो दे दो।

महानुभाव! नष्ट वस्तु का शोक विद्वान लोग नहीं करते। राजा की समझ में आया वस्तु के नष्ट होने पर शोक मत करो,

अतिक्रान्त वस्तु का शोक मत करो, मृत व्यक्ति का शोक मत करो ऐसा मूर्ख लोग ही करते हैं। जो वस्तु स्वरूप का विचार करते हैं, अपने मन को अविचल रखते हैं वे विद्वान् होते हैं। आप सभी विवेकी बनो, विद्वान् बनो, पण्डित बनो ऐसी सद्भावना आप सभी के प्रति भाता हूँ। इन्हीं सदभावनाओं के साथ.....

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

उत्कृष्ट चार वस्तु

जीवन में लाभ प्राप्त करने की भावना लगभग सबकी होती है कोई व्यक्ति जीवन में हानि नहीं चाहता जीवन में सुख पाने की लालसा सबकी होती है, कोई दुःख नहीं चाहता। जीवन में बंधु–बांधव मित्र बनाने की आकांक्षा सबकी होती है, कोई शत्रु नहीं चाहता। जीवन में धन सभी चाहते हैं कोई भी निर्धनता नहीं चाहता। लाभ किसे कहते है, कैसा चाहिए? संभव है इस संबंध में सबकी परिभाषायें अलग–अलग हों कोई कहता है 'धन का लाभ' व्यापार में लाभ हो, उसे ही लाभ कहते हैं। दूसरे व्यक्ति 'शुभ–लाभ' लिखते हैं, लाभ हो तो शुभ का हो। तीसरा व्यक्ति कहता है 'आरोगलाहं' अर्थात आरोग्य का लाभ हो। एक साधक मुनिराज कह रहे हैं– 'बोहिलाहं'–रत्नत्रय का लाभ हो। कोई कहता है– णाणणलाहं ज्ञान का लाभ हो। कोई कहता है– 'समाहिलाहं' समाधि का लाभ हो। कोई चाहता है 'जसोलाहं' यश कीर्ति का लाभ हो। कोई कहता है 'पदलाहं'–पद का लाभ हो, कोई कहता है 'पदिट्ठालाहं'–प्रतिष्ठा का लाभ हो, सबकी दृष्टि में मेरी अलग ही प्रतिष्ठा हो।

लाभ सबकी दृष्टि में अलग–अलग है। जिसकी दृष्टि में जो वस्तु महत्वपूर्ण है वह उसे लाभ कहता है। चक्रवर्ती की आयुधशाला में चक्ररत्न प्राप्त हुआ, तो उसे चक्र रत्न का लाभ हुआ, नवनिधि–चौदह रत्नों का लाभ हुआ, सात चेतन रत्न–सात अचेतन रत्नों को लाभ मानता है। आप भी कहीं मार्ग में जा रहे थे किसी ने मार्ग में आपको कोई वस्तु भेंट की तो आप कहते हैं मार्ग में वस्तु का लाभ हुआ या कहीं आपका सम्मान हुआ वह आपको कोई वस्तु, वस्त्र, श्रीफलादि देना है तो आप कहते हैं मुझे यह–यह लाभ हुआ अथवा सम्मान का लाभ हुआ। जिसके जीवन

में जो वस्तु यथेच्छ–यथेष्ट होती है वह उसका लाभ चाहता है। अथवा जो जिसके पास नहीं है उसका लाभ चाहता है। जिसके पास धन नहीं है वह धन का लाभ चाहता है किन्तु धन का लाभ चाहने वाले व्यक्ति सामान्य और अधम कहलाते हैं। नीतिकारों ने लिखा है–

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमा।
मान महान मिच्छन्ति मानं हि महतां धनं।।

अधम पुरूष धन का लाभ चाहते हैं कोई भी काम हो पर धन प्राप्त हो जाये। वह धन प्राप्ति के लियेकोई भी तुच्छ से तुच्छ कार्य करने को तैयार हो जाना है। मध्यम पुरूष को धन भी चाहिये और मान सम्मान भी चाहिये। किन्तु जो महान् पुरुष है वे कहते हैं मेरे पास धन की क्या कमी है, ढेल कंकड़–पत्थरों की तरह से रत्नों का ढेर लगा है, मुझे वह न चाहिये, फिर क्या चाहिये? मान–सम्मान चाहिये, जहाँ भी जाऊँ वहाँ मान–सम्मान ही मिले। पृथ्वीभर के सभी जीव मेरा सम्मान करें। वे महान् पुरुष बस मान–सम्मान की इच्छा करते हैं क्योंकि वही उनका धन है। भले ही वे जंगल में रहें, फिर भी कहते हैं कि वहाँ भी कोई हमें भगवान् मानकर पूजे। हमारा सम्मान करें, हमारी प्रतिष्ठा हो तब ही हमें संतुष्टि है।

महानुभाव! किन्तु यहाँ नीतिकार जो कह रहे है उनकी व्याख्या अलग है। वह किसका लाभ चाह रहे हैं।

आरोग्यं परमं लाभं, संतोषो परमं धनं।
धैर्यो हि परमो बंधु, वैराग्यं परमं सुखं।।

आरोग्य उत्कृष्ट लाभ है, संतोष परम धन है, धैर्य परम मित्र व वैराग्य परम सुख है सर्वप्रथम देखते हैं वे

वे बोधि का लाभ नहीं चाह रहे क्यों? क्योंकि वे कह रहे हैं मैं बोधि तो तब प्राप्त करूँ जब मेरा शरीर मेरा साथ दे। मेरा

शरीर ही रोगी है तो बोधि कौन चाहे। मेरे शरीर में अनेक रोग हैं, व्याधि की पीड़ा में संक्लेश परिणामों के साथ जी रहा हूँ, उस समय में मैं ज्ञान मागूँगा, बोधि मागूँगा, धन सम्पत्ति चाहूँगा, क्या चाहूँगा? सबसे पहले तो मैं यही चाहूँगा कि मुझे आरोग्य लाभ मिले। मैं निर्धन रहकर भी अपना जीवन व्यतीत कर सकता हूँ किन्तु शरीर ही मेरा विकल है इतनी वेदना है कि मैं तड़प रहा हूँ, प्राण निकल नहीं रहे, ऐसे में क्या मांगेगा व्यक्ति? इस समय कोई उससे कहे कि हम आपको धन दे रहे हैं, स्वर्ण चांदी रत्नों का ढेर लगा देते हैं किन्तु इससे भी उसे एक क्षण के लिये शांति नहीं मिलेगी। बिन पानी की मछली की तरह कोई तड़प रह हो, वह कहेगा हमें ऐसा धन नहीं चाहिये हमें तो आरोग्य लाभ चाहिये। नीतिकारों ने कहा बड़े–बड़े महल, दुर्ग, किले, सेना, प्रजा, कोश ये सब कुछ नहीं चाहिये, सबसे पहले मुझे आरोग्य लाभ चाहिये। संसार में सबसे उत्कृष्ट लाभ यदि कोई है तो वह है आरोग्य लाभ।

जीवन में लाभ कभी अकेला नहीं मांगना, यदि लाभ मांगो तो शुभ मांगो, जीवन में शुभ होना ही लाभ है। अशुभ होना वह लाभ होते हुऐ भी हानि है। प्रत्येक लाभ शुभ नहीं होता है किन्तु, प्रत्येक शुभ लाभ रूप ही होता है इसलिये नीतिकारों ने कहा ''आरोग्यं परमं लाभ'' आरोग्यता ही उत्कृष्ट, परम लाभ है, उससे बढ़कर के और कोई दूसरा लाभ नहीं। आरोग्य का लाभ मिल जाये तब फिर जीवन में और कुछ जो मिले वह सब ठीक है, सबसे पहले लाभ तो आरोग्य का मिले।

कहा भी है–'पहला सुख निरोगी काया' ज्योतिषी लोग जब जातक की कुण्डली देखते हैं तो कुण्डली में राजयोग है, गजकेसरी योग है, लक्ष्मीपतियोग है, किंबहुना योग है या धनद–कुबेर योग है अथवा कोई नीच भंग योग, अशुभ योग है,

कालसर्पादि ये सब योग वे बाद में देखते हैं, उच्च–नीच ग्रह भी बाद में देखते हैं, सबसे पहले देखते हैं जातक की आयु कितनी है। यदि उसकी आयु ज्यादा नहीं है तो उसके अच्छे–अच्छे ग्रह क्या करेंगे। वह बहुत ज्ञानवान् बनेगा, बहुत धन सम्पत्ति मिलेगी इन सब का क्या, पहले यह तो देख लो कि उसकी आयु कितनी है।

पहले जीवन देखा जाता है ऐसे ही भला आदमी पहले आरोग्य की भावना भाता है कि पहले शरीर तो मेरा स्वस्थ रहे। क्योंकि संसार में कुछ ऐसे भी मूर्ख लोग हैं जो धन कमाने के लिये शरीर को दाव पर लगा देते हैं। युवावस्था में धन प्राप्त करने के लिये जुनून सवार हो जाता है कि बस धन कमाना है और दिन रात लगे रहना है। न घर–परिवार देखता है न सेवा, धर्म, कर्म कुछ नहीं देखता बस हाय! पैसा, पैसा ही पैसा चाहिये। पैसा तो जोड़कर रख लिया किन्तु शरीर खोखला कर लिया। वह डायबिटिक हो गया, उसे थायरॉइड भी हो गया, B.P. Problem माइग्रेन problem, Liver खराब हो गया, कैंसर की संभावना हो गयी और न जाने क्या–क्या बीमारी हैं। अब वह धन घर में रखा है तो किसलिये रखा है, उसे क्यों कमाया।

वह धन का क्या सदुपयोग करेगा, वह खा नहीं सकता पड़ा है, मन नहीं लग रहा न बैठे चैन, न खड़े चैन, न लेटे चैन, वह करे तो क्या करे। पहले तो धन कमाने में शरीर को दाव पर लगा दिया फिर शरीर को बचाने में धन को दाव पर लगा रहे हो, न शरीर का सुख भोगा, न धन का सुख भोगा, उससे बड़ा मूर्ख और कौन होगा? कोई नहीं। बुद्धिमान वे हैं जो धन ज्यादा नहीं कमायेंगे, कम कमायेंगे पर पहले अपने घर को स्वर्ग बनायेंगे। माता–पिता की सेवा करेंगे, पत्नी–बच्चों को भी समय देगे, धर्म–कर्म, पूजा–पाठ भी करेंगे। वे कहते हैं हमारे भाग्य में

जितना है उतना हमें मिल जायेगा, तृष्णा कभी किसी की पूर्ण नहीं हुयी। तो सबसे बड़ा लाभ आरोग्य लाभ है।

आगे कह रहे हैं कि जीवन में? धन क्या है संतोष ही परम धन किसी का मन बाहर के धन से कभी नहीं भरता, यहाँ तक कि चक्रवर्ती का भी नहीं।

इच्छति भाती सहस्रं सहस्रं, लक्षादि मीहते,
लक्षाधिपतिस्तथाराज्यं राज्यस्य स्वर्ग मीहते।

जिसके पास 100 रूपया है वह हजार की कामना कर रहा है, हजार वाला एक लाख की, एक लाख वाला करोड़ की, करोड़ वाला अरबों–खरबों की सोचता है। इतना भी हो जाये तो मैं राजा बन जाऊँ, राजा बन गया तो अधिराजा, मण्डलेश्वर, महामण डलेश्वर चक्रवर्ती बनूँ। अगर ये भी हो गये तो इससे ज्यादा वैभव है इससे ज्यादा और क्यों नहीं है। तो बाहर के वैभव से कोई तृप्ति नहीं होती है। तृप्ति किस धन से मिलती है–

गौधन गजधन बाज धन, और रतन धन खान।
जब आवे संतोश धन, सब धन धूलि समान।।

''यदि चित्त में संतोष है तो बाहर धन का लगा हुआ ढेर भी मिट्टी के समान है 'पर द्रव्येषु लोष्ठवत्' दूसरे का द्रव्य मिट्टी की तरह दिखाई देता है, अपने पास जो है वह पर्याप्त है ऐया सोचने वाला न तो ससुराल के धन की आशा करता है, न समधियाने के धन की आशा करता है, न बेटी के धन की आशा करता है न बेटे की कमाई के धन की आशा करता है, वह कहता है मुझे तो बस पुण्य करना है, मेरे पास जो है वह मेरे भाग्य का है, वह पर्याप्त है, मुझे दूसरे का न चाहिये। जीवन में सबसे बड़ा धन जिससे तृप्ति मिलती है, शांति सुख मिलता है वह ''संतोष धन'' से मिलता है, अपने में ही संतोष करो। स्वयं के श्रम से कमाये

धन से सूखी रोटी भी खाओगे तो बहुत आनंद आयेगा, उसमें संतोष धारण करो। सामने वाले की चुपड़ी रोटी देखकर जी मत ललचाओ, सामने वाले के धन को देखकर के दुर्भावना मत लाओ।

गृहस्थ के लिये संतोष धन और आत्म हितार्थी के लिये ज्ञान धन आवश्यक है। ज्ञान धन के बिना आत्महितार्थी की प्रवृत्ति मोक्षमार्ग में हो नहीं सकती। आत्मा का हित ज्ञान रूपी धन से ही होता है और जितना तत्व ज्ञान का चिंतन करोगे, जितना चिंतन करोगे उतना ज्ञान धन प्राप्त होगा। स्वाध्याय करते–करते शब्दों का संग्रह हमारे मस्तिष्क में हो जाता है भाव श्रुतज्ञान तो चिंतन से आता है। गाय ने बहुत सारा चारा खाया किन्तु रात में वह जुगाली करती है यदि हम भी स्वाध्याय के उपरांत, उपदेश–सुनने के उपरांत चिंतन न करें तो वे शब्द हमारा कल्याण नहीं कर सकते। कल्याण तत्वचिंतन के माध्यम से होता है। अतः सबसे बड़ा धन है कल्याण के लिये वह है ''ज्ञान धन, संयम धन, सम्यक श्रद्धारूपी धन, वैराग्यधन, भक्तिरूपी धन ये धन, है आत्म कल्याण करने के लिये और गृहस्थ के लिये सामान्य जीवन जीने के लिये संतोष ही उत्कृष्ट धन है।

आगे कहा–**'धैर्यो हि परमो बंधु'** संसार में बंधु कौन है? प्रत्येक व्यक्ति की सामान्य आदत होती है कि वह मित्रता अपने से बड़े से करना चाहता है धन वाला है मौके पर काम देगा, अगर मित्र बन जाये तो। अथवा शक्तिशाली है काम पड़ जाये तो अवश्य सहायता करेगा। ऐसी मानसिकता रहती है ना? कभी किसी बड़े व्यक्ति ने किसी भिखारी से मित्रता की क्या? आपके सामने कोई भिखारी या रोगी अथवा निर्धन विकलांग हो तो तुम क्या उससे मित्रता करने जाओगे? नहीं। क्यों नहीं करोगे? क्योंकि आपकी मानसिकता ये बनी है कि मित्रता अपने से सबल से करो, जो आपकी कभी सहायता कर सके, जो स्वयं

ही सहायता माँग रहा है उससे मित्रता क्या करनी? पर ध्यान ये रखना जब मित्रता छोटे से भी की जाती है तो वह भी अवसर पर काम आता है और सही बात बता दें तो ''बड़ा व्यक्ति अवसर पर अपनी औकात दिखा जाता है और छोटा व्यक्ति मौके पर काम आता है।''

बड़े व्यक्ति से काम कह भी नहीं पाओगे वह टाल देगा, आशा दिलायेगा परंतु बीच में जाकर आपको फँसा देगा, न यहाँ जा पाओगे, न वहाँ जा पाओगे उससे कुछ कह भी न पाओगे। मित्रता करना है तो समान वाले से करो, लघु से करो। यदि शेर ने चूहे को क्षमा कर दिया, मित्रता कर ली तो चूहे ने शेर को जाल से बचा लिया, यदि शेर किसी अष्टापद से मित्रता करता तो मौके पड़े पर क्या कहता? चुपचाप रह, नहीं तो एक पंजा मारूँगा मर जायेगा। बड़े से मित्रता करोगे तो वह कभी सबके सामने डाँटकर के बदनामी भी कर सकता है, अपमान कर सकता है।

किन्तु यहाँ पर कहा आप उन सभी छोटे–बड़े बंधुओं को छोड़ो सबसे बड़ा बंधु या मित्र कोई है तो वह है 'धैर्य'। धैर्य ही आपको आपत्ति–विपत्ति में संबल देने वाला होता है। तो वही परमबंधु है आगे कहा कि संसार में सबसे बड़ा सुख क्या है? बताया 'वैराग्यं परमं सुखं', वैराग्य से बड़ा सुख संसार में कुछ भी नहीं हैं। संसार की कोई भी वस्तु प्राप्त कर लेना उससे सुख नहीं मिलेगा, उससे विरक्ति हो जायेगी किन्तु यदि आपके चित्त में वैराग्य है तो सुख को प्राप्त कर सकते हैं। वैरागी को कोई भी दुःखी नहीं कर सकता। जिसके तत्वज्ञान हुआ है, वस्तु स्वरूप को जाना है वही वैरागी हो सकता है और आचार्य श्री वादीभ सिंह सूरी ने कहा है–''तत्वज्ञानं हि जीवानां, लोकद्धये सुखावहम्'' तत्वज्ञान से युक्त प्राणी को दोनों लोकों में सुख की प्राप्ति होती है, वह ही प्राणियों के लिए सुख का कारण है। जैसे कमल पंक

में रहता हुआ भी उससे अलिप्त रहता है उसी प्रकार संसारी प्राण ी के संसार में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहने की कला ही वैराग्य है।

''सदन निवासी तदपि उदासी, तातै आस्रव छटा छटी''

भरत चक्रवर्ती के समान आसक्ति से रहित होकर महलों में रहना भी उतना हानिकारक नहीं जितना आसक्ति सहति एक याचक होकर के जीना है। मुनि तो पूर्ण रूप से भोगो के त्यागी होते है। अरें! आप सब लोग यदि मुनि न बन पाओ तो कम से कम मुनीम तो बन जाओ। मुनीम अर्थात् जैसे सेठ के यहाँ काम करने वाले मुनीम के हाथ में से लाखों करोड़ों रूपये इधर–उधर होता है किन्तु उसको उसमें कोई विषाद नहीं होता क्योंकि वह धन उसका नहीं है उसी प्रकार गृहस्थ अपने कर्त्तव्यों का निर्वाहन मुनीम के समान करे, उन भोगो में आसक्त न हो। जैसे कड़पी औषधि का सेवन करने वाला पुरुष भावना भाता है मेरी यह औषधि जल्दी से जल्दी छूटे उसी प्रकार गृहस्थ भावना भाए कि भोग अतिशीघ्र मुझसे छूटे। विरक्त भाव के साथ जीए वहीं सबसे अधिक सुख की प्राप्ति संभव है।

आपके जीवन में इन चारों का लाभ हो। आरोग्य का लाभ हो, संतोष रूपी धन की प्राप्ति हो, धैर्य रूपी बंधु सदैव आपके साथ में रहे और वैराग्य रूपी सुख आपको प्राप्त होता रहे ऐसी हम आपके प्रति मंगल भावना भाते हैं और इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

साधु दर्शन का फल

आबाल–वृद्ध सभी इस बात को जानते है कि जीवन में सुख–शांति पुण्य के माध्यम से होती है, पाप के माध्यम से नहीं। पुण्य के बिना इष्ट पदार्थों की प्राप्ति नहीं होती, पुण्य के बिना जीवन में सुखद अनुभूति नहीं होती, पुण्य के बिना हम दूसरों के लिये भी पुण्य में निमित्त नहीं बन सकते। पुण्य के माध्यम से ही हमें पुण्य वस्तुओं का लाभ होता है, पुण्य के उदय से ही सातिशय पुण्य के साधन प्राप्त होते हैं, पुण्य के उदय से ही हमारे जीवन में पापों का उपशम होता है, पुण्य के माध्यम से ही चार उत्तम और शरण को प्राप्त हो पाते हैं, पुण्य के माध्यम से ही जीव उत्तम श्रावक या परमेष्ठी बन पाता है। पुण्य के बिना उसे जीवन में यथेष्ट वस्तु का लाभ असंभव है।

आचार्यों ने लिखा है कि श्रेष्ठ पुण्य क्या है? आचार्य महोदय लिखते हैं–

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधु समागमः।।

साधूनां दर्शनं पुण्यं– साधुओं का दर्शन पुण्य का फल है। साधुओं का दर्शन पुण्य के लिये है। कहीं किसी प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये निकल रहे हों और साधुओं के दर्शन हो जायें तो ऐसा माना जाता है कि कार्य सिद्ध होगा। महाभारत के युद्ध के समय अर्जुन से श्री कृष्ण ने कहा अर्जुन! तुम रथ पर आरूढ़ हो और गांडीव धनुष को संभालो तुम्हारी विजय सुनिश्चित है। बोले क्यों? बताया देखो सामने दिगम्बर संत हैं उनके दर्शन करो, कार्य के प्रारंभ में दिगंबर संत का दर्शन हुआ सफलता अवश्य मिलेगी।

पदमिनी राजहंसश्च, निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः।

य देश मुपसपन्ति सुभिक्षं निर्दिशेत्।।

पद्मनी स्त्री, राजहंसपक्षी, निर्ग्रंथ साधु और तपस्वी जिस देश में विचरते हैं, निवास करते हैं चर्या करते हैं वहाँ निश्चित ही सुभिक्ष होता है, मंगल होता है। ये लोक मंगल करने वाले हैं। लोक में मंगल इन्हीं के माध्यम से होता है और ये ही लोकोत्तर मंगल करने वाले होते हैं। लोक में मंगल लौकिक मंगलों के माध्यम से भी किया जाता है किंतु साधु लौकिक मंगलों से ऊपर लोकोत्तर मंगल हैं किंतु लोक में सदैव मंगल करने वाले है। इसलिये आचार्य वीरसेन स्वामी जी ने पंचपरमेष्ठियों को 'लोकपाल' कहा है। ये लोक का पालन करने वाले हैं। जब तक पंचपरमेष्ठी हैं तब तक जीव संसार में सुख शांति को प्राप्त करते रहेंगे, धर्म जीवंत रहेगा, ये लोक का पालन करने वाले हैं, इनके माध्यम से धर्म जीवित है व लोक स्थिर है। यहाँ तक कि साधुओं का चित्त भी चित्त को आनंदित करने वाला होता है और जिस चित्त में साधु का चरित्र आ जाये उस चित्त का तो कह ही क्या सकते हैं, वह चित्त आज नहीं तो कल परमात्मा बनेगा ही बनेगा।

महात्मा का चरित्र जिस चित्त में आ जाता है वह चरित्र आज नहीं तो कल परमात्मा बन जाता है। जब तक परमात्मा न बने तब तक के लिये पुण्यात्मा तो है ही। और जिसके चित्त में साधु का चित्र व चरित्र कुछ भी नहीं है तो समझो उसका चित्त अभी पवित्र नहीं है। साधु का चित्त व चरित्र चित्त में आते ही पवित्रता अपने आप बढ़ने लगती है। ऐसा लगता है जैसे आत्मा पर इत्र का छिड़काव कर दिया हो। साधुओं का चित्त मित्र की तरह से पापों से बचाने वाला होता है। इसलिये कई लोग अपने पर्स में साधुओं की photo लगाकर रखते है, पेन में लगाकर रखते हैं कोई कहीं लगाकर रखते हैं। कोई गुरू के नाम की डायरी रखते हैं उनके दर्शन करके उनका मन संभल जाता है, अगर

तन पापों में जा रहा हो तो तन संभल जाता है।

साधु को देखकर बोलते–बोलते वचन संभल जाते हैं। जैसे मंदिर में भगवान् दिखाई दे जायें तो आप अपने क्रोध पर नियंत्रण कर लेते हैं, यदि मंदिर न हो तो हाथ उठ सकता है, मंदिर हो तो कह देते हैं–अभी यहाँ मंदिर है, तुम्हें बाहर जाकर देखूंगा। मंदिर है तो आपको कितना भी क्रोध आ रहा हो, गाली–गलौज जैसे अपशब्द नहीं बोलोगे। मन के विचारों में भी सोचोगे कि यहाँ भगवान् के सामने ऐसे गंदे या निंद्य विचार नहीं ला सकता, हिंसा, झूठ आदि पाप युक्त वचन नहीं बोल सकता। तो जैसे भगवान् के सामने आपका मन, वचन व तन नियंत्रित रहता है ऐसे ही जिस साधु के प्रति आपके चित्त में गहरी श्रद्धा है उस साधु का चित्त यदि आपके चित्त में रहता है तो स्मरण आते ही आप स्तंभित जैसे हो जाते है। मन–वचन–काय की दुष्प्रवृत्ति वहीं की वहीं रुक जाती है। यदि सामने से आप के इष्ट आराध्य गुरू आ जायें और आप कितने ही क्रोध में हों तो तुरंत ही क्रोध भाग जाता है, हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर व्यक्ति उनके चरणों में पहुँच जाता है।

साधुओं के दर्शन मात्र से, उनका नाम लेने मात्र से, उनका चित्त देखने मात्र से चित्त शुद्ध होता है, पवित्र होता है। और साधु जैसा मित्र और कोई इस तीन लोक में नहीं है।

एको मित्रो भवति, सतिर्वा भूपतिर्वा।
भूपतिः मित्रो भवति, केन दृष्टं वा श्रुतं वा।।

संसार में मित्र एक ही हो सकता है या तो राजा हो सकता है या साधु हो सकता है। राजा से मित्रता करोगे और राजा ने मित्रता निभा दी तो इस लोक में निहाल कर देगा। और साधु से मित्रता की और साधु ने मित्रता निभा दी तो इस लोक

व परलोक दोनों को धन्य कर देगा। किंतु राजा मित्रता कभी निभाता नहीं है। वह किस–किस से मित्रता निभायेगा, प्रजा ने गलती की तो दण्ड देगा ही, मित्रता नहीं निभायेगा। राजा किसी का मित्र हुआ, क्या यह कभी देखा या सुना है। यदि राजा मित्रता निभायेगा तो राज्य का संचालन कैसे करेगा, राज्य में अराजकता फैल जायेगी। तो फिर मित्र कौन हुआ? साधु। साधु का सामीप्य पुष्पों की समीपता तरह से जीवन को सुगंधित करने वाला होता है, वह जीवन को सौरभ से भर देता है।

साधु से मित्रता एक बार कर ली तो वृक्ष की शीतल छाया की तरह से चित्त को शीतल छाया मिलेगी। साधु सन्निध्य सरिता में बहते हुये कलकल करती नदी की शीतल लहर की तरह से ताप को दूर करने वाला होता है। साधु का सामीप्य शीतल नदी, झील, जलाशय की भाँति चित्त के संताप को दूर करने में समर्थ होता है। कितनी भी गर्मी पड़ रही हो और पानी कितना भी तप रहा हो फिर भी झरने के नीचे पहुँच जाओ तो कंपकपी सी आ जाती है तो ऐसे भी शीतलता मिलती है। अतः कहा साधु का सामीप्य झरने की तरह से संताप दूर करके शांति देने वाला है सघन वृक्ष की तरह से वह आतप को दूर करने वाला है, पुष्पों की वाटिका की तरह से संयम की सुगंधी भरने वाला है। साधु का सान्निध्य स्वपर प्रकाशी दीपक की तरह से आपके जीवन को भी प्रकाशित करने वाला है।

साधु का सान्निध्य हो सकता है कंथचित् आपको कष्ट कर लगे साधु कभी आपको कड़वे शब्दों में समझायें, कभी मीठे शब्दों में समझायें, कभी माना डाँट भी दें अरे! माता–पिता भी डाँटते हैं न! जब डाँटते हैं तो सुधार होता है, न डाँटे तो बहुत बड़ी जोखिम उठानी पड़ सकती है, बहुत बड़ा संकट भी आ सकता है। साधु हित की शिक्षा देते हैं अहित से बचाते हैं। घर के बुजुर्ग

वे घर में लगी टीन की तरह से हैं। जो टीन स्वयं तपकर के गर्म हो जाती है किन्तु नीचे बैठने वालों को छाया देती है और जैसे ही कोई कंकड़ पत्थर गिरता है तो टीन स्वयं पर ले लेती है उसके नीचे बैठने वालों पर चोट भी नहीं आने देती है। टीन पर जब कंकड़–पत्थर पड़ते हैं तो आवाज तो होती है किंतु वह रक्षा भी करती है, उसी प्रकार घर के बड़े बुजुर्ग थोड़ा आवाज तो करते हैं किन्तु धूप से कंकड़–पत्थरों से रक्षा भी करते हैं घर में रहने वालों का संरक्षण भी करते है। यद्यपि सूर्य का सद्भाव कभी ऐसा लगता है चुभन पैदा कर रहा हो किन्तु उसका अभाव? उसके अभाव से तो जीवन में अंधकार के अलावा कुछ भी नहीं है। इसलिये गुरुजनों का सद्भाव कभी–कभी किसी को लगता हो अरे! महाराज जी आये है अब तो व्यवस्था बनानी पड़ेगी, सेवा करना है और जब चले जायेंगे तब लगता है अरे भाई! वंचित रह गये, वे ही तो हमारे जीवन का आलम्बन थे। ऋृषभदेव भगवान् के मोक्ष जाने पर भरत चक्रवर्ती को बहुत दुःख हुआ। वे कहते ओह! जब वे साक्षात् विराजमान थे तब मैं उनसे जिज्ञासा समाधान करता था, अब किससे पूछूँ। भगवान् महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के बाद गौतम स्वामी को कितना विकल्प आया पुनः समत्व भाव से उन्होंने ध्यान धरा और क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होते हुए शुक्ल ध्यान में लीन होते हुये, केवली बन कर पुनः सिद्ध हुये।

महानुभाव! ऐसे ही साधुओं का सान्निध्य है जब तक होते हैं तब सोचते हैं बाद में लाभ ले लेंगे, पर लाभ से वंचित रह जाते है। अरे! जहाँ साधु नहीं हैं वहाँ जाकर देखो लोगों को कितनी प्यास है। दर्शन लाभ के लिए भी विचलित हो उठते है। क्योंकि साधूनां दर्शनं पुण्यं–साधुओं का दर्शन पुण्य का निमित्त है, पुण्य देने वाला है और साधुओं के दर्शन भी पुण्य के निमित्त से होते हैं सूर्य का ताप, उसकी ऊष्मा से ही जीवन संभव है। सो सकता

है सूर्य की तेज धूप आदि जलन या चुभन उत्पन्न करती हो किन्तु जीवन में प्रकाश उत्पन्न करने वाला वही है। उसी प्रकार गुरु के सद्भाव में ही जीवन प्रकाशित होता है। जैसे सूर्योदय से कमल खिल जाता है उसी प्रकार गुरु दर्शन से भव्य प्राणी का हृदय कमल खिल उठता है। आत्मानुशासन में आचार्य श्री गुणभद्र स्वामी ने कहा है–

विकसयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।
रवेरिवारविन्दस्य कठोरश्च गुरुक्तयः।।142।।

कठोर गुरु वचन भव्य जीव के मन को उसी तरह विकसित करते है जैसे सूर्य की कठोर किरणों कमल को विकसित करती है।

'तीर्थभूता हि साधवः' साधु तीर्थभूत हैं। तीर्थ अर्थात् घाट हिंदुओं में तीर्थ कहते हैं नदियों के घार को, जहाँ एक नाव में बैठकर दूसरे किनारे तक जाया जाता है। जैन धर्म में तीर्थ की परिभाषा कही है–''तरति येन निमित्तेन तत् तीर्थ'' जिसके माध्यम से तिरा जाता है वह तीर्थ है। अथवा ''तरति पापादिंक यस्मात् सः तीर्थः'' जिससे पाप आदि तिरते हैं वह तीर्थं है। तो साधु तीर्थ हैं। क्यों? क्योंकि उनके पास रत्नत्रय है, वे स्वयं रत्नत्रय की नौका में बैठे हैं और उनके पास पहुँच जाओगे तो वे तुम्हें भी सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र दे देंगे। नौका वाला नाविक अपनी नाव दूसरों को देदे तो वह बिना नाव के रह जायेगा किंतु साधु दूसरों को भी सम्यक् दर्शन–ज्ञान–चरित्र देंगे तो उनके स्वयं का रत्नत्रय छूटेगा नहीं। वे दूसरों के रत्नत्रय प्राप्ति में निमित्त बनें सैकड़ो, हजारों, लाखों, करोड़ो के लिये बनें फिर भी उनका रत्नत्रय कम नहीं हो जायेगा। स्वयं भी रत्नत्रय की नौका का आक्षय ले पार होते हैं व भव्य प्राणियों को भी उसी रत्नत्रय रूपी नौका के माध्यम से भव सागर से तिराते हैं। साधु तीर्थभूत हैं। वे संसार सागर से तिराने वाले हैं। इसलिये साधु चेतन तीर्थ हैं।

महानुभाव! आप अचेतन तीर्थों पर भी जाते हैं जैसे शाश्वत सिद्ध क्षेत्र सम्मेद शिखर जी, गिरनार जी, चंपापुर, पावापुर आदि क्षेत्रों पर आप जाते हो, क्यों? क्योंकि विशुद्व वर्गणायें वहां आज भी है। उन्हीं साधुओं की वर्गणायें है जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, अब वे साधु तो नहीं मिले, उनकी वर्गणायें खोज रहे हैं। और जहाँ साधु की साक्षात् वर्गणाएँ मिल जायें तो? तो वर्गणा और साधु दोनों ही मिल गये।

अचेतन तीर्थ तो अचेतन है साधु तो चैतन्य तीर्थ हैं। जिनवाणी को भी तीर्थ कहते हैं स्वाध्याय करके भी संसार सागर पार होता हैं, जिनेन्द्र भगवान् भी तीर्थ हैं वे जहाँ विराजमान हो जाये वहां तीर्थ बन जाता है। किन्तु साधु में सभी तीर्थ हैं। साधु में रत्नत्रय रूपी धर्म तीर्थ है, साधु परमेष्ठी हैं इसलिये वे तीर्थ हैं, साधु अरिहंत मुद्रा हैं इसलिये तीर्थ है, साधु जिनवाणी की भाषा बोलते हैं भगवान् की वाणी बोलते हैं इसलिये वे तीर्थ है। जिनवाणी, शास्त्र, आगम, ग्रंथ तो बोलते नहीं, साधु तो समझाते हैं। साधु किस प्रकार से तीर्थ नहीं हैं। अरे साधु से बड़ा तो संसार में कोई तीर्थ ही नहीं है। जिसने साधु रूपी तीर्थ अर्थात् घाट पर आकर के अपनी आत्मा का प्रक्षालन नहीं किया, संसार सागर से तिरने की भावना नहीं भायी, उसका पुरुषार्थ नहीं किया तो व्यक्ति ऐसा ही समझो कि समुद्र के किनारे भी प्यासा ही बैठा है। **''पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन सुन आवे हाँसी''** वह पानी में भी प्यासी है। साधुओं का सान्निध्य प्राप्त करके व्यक्ति को यथेच्छ लाभ होता है।

यहाँ ठीक लिखा है–''साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवाः'' साधुओं का दर्शन पुण्य रूप व तीर्थभूत है। किन्तु एक बात और कह रहे हैं 'तीर्थं फलति कालेन' समय आने पर तीर्थवंदना का फल मिलता है। तीर्थ वंदना तो ऐसे है जैसे किसी

किसान ने अपने खेत पर बीज बो दिया, उसका फल मिलेगा समय आने पर किंतु साधु कैसे तीर्थ हैं? ''सद्यः साधु समागमः'' मिशरी की डली तुरंत मुँह में रखो तुरंत स्वाद आता है, पुष्प को सूंघ लिया तुरंत ही सुगंध आ जाती है। छाँव प्राप्त करने के लिये वृक्ष के नीचे गये तुरंत ही छाया मिल जाती है तो साधु के पास पहुँचकर के तत्काल में भी आनंद आता है, पुण्य लाभ होता है और निकट भविष्य और दीर्घ भविष्य में भी पुष्प का लाभ मिलता रहता है, संस्कार प्राप्त होते हैं। आगे भी उन संस्कारों से पुण्य का संचय किया जा सकता है। तो तीर्थ तो समय आने पर फल देता है किन्तु सद्यः साधु समागमः साधु का समागम तो तत्काल में भी पुण्य का फल देने वाला होता है और कालान्तर में भी पुण्य का फल देने वाला होता है।

कई बार हम स्वाध्याय आदि करते हैं तो कई लोग आकर बैठ जाते हैं, श्रावकों से पूछो भाई आप यहाँ क्यों बैठे हो? वे कहते हैं जो लाभ हमें यहाँ हो रहा है वह पूरी दुनिया में कहीं नहीं हो रहा है, इसलिये आपके पास आकर के बैठे हैं। संतो के पास बैठकर हमें बहुत आनंद आता है। अभी संत के समीप बैठकर बहुत आनंद आ रहा है, जब संत तुम्हारे अंदर बैठ जायेंगे तब और जब तुम ही संत बन जाओगे तब क्या आनंद आयेगा। अभी संतों के पास बैठकर संतोषी प्रवृत्ति बना रहे हो पुनः संतोषी वृत्ति बनाकर के संतों सी वृत्ति भी बनाओ। आपकी वृत्ति संतोषी बने, संतों सी बने संतत्व आपके अंदर आये। हम आपके प्रति ऐसी भावना भाते हैं, साधुओं का यथेच्छ लाभ आप ले सकें, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ हम अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

बंधन

संसार में जितने भी जीव जन्म–मरण को प्राप्त हो रहे हैं वे सभी अनादिकाल से कर्मों से बंधे हुये हैं ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो अनादि काल से स्वयं सिद्ध रहा हो, कर्मों से बद्ध न हुआ हो। प्रत्येक मुक्तत्मा पूर्व में कर्मों से बद्ध ही थी। बाद में मुक्ति को प्राप्त हुयी। आज भी जो आत्मायें कर्मों से वद्ध हैं वे आत्मायें अपने पुरुषार्थ के बल से अपने कर्मों को नष्ट करके मुक्त अवस्था को प्राप्त हो सकती हैं। आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं–

रतो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु या रज्जह।

रागी जीव कर्मों को बांधता है। जो रक्त है, लीन है, अत्यंत आसक्त है वह बंधा हुआ है, कर्मों को बांध रहा है। उसकी राग की तीव्रता से जो कर्मों का बंध हो रहा है आत्मा में वह तो अलग हो ही रहा है किन्तु वर्तमान काल में उसका उपयोग जिस पदार्थ में लगा है वह उस पदार्थ से बंधा हुआ ही है। गाय खूंटे से बंधी हुयी दिखाई देती है या अन्य कोई भी जानवर पशु जो बंधे दिखाई देते हैं, पक्षी पिंजरे में बंद दिखाई देते हैं,। गाय को रस्सी के सहारे से वह कृषक अपने घर से खेत, खेत से घर या अन्य जगह ले जाता है उसके गले में तो प्रत्यक्ष में बंधन दिखाई दे रहा है वह गाय बंधन को तोड़कर मुक्त होना चाहती है। पिंजरे में बंद तोता आदि कोई भी पक्षी वह भी बंधन से मुक्त होना चाहता है। बधंन में कोई रहना नहीं चाहता।

मनुष्य के गले में कोई बंधन तो दिखाई नहीं देता किंतु वह फिर भी बंधा जरूर है इसलिये वह अपने घर को छोड़कर बाहर कहीं भी चला जाये तब भी अदृश्य रज्जुओं से बंधा हुआ

वह पुनः–पुनः वहीं लौटकर के पहुँच जाता है। सुबह जाता है तो शाम तक आता है या दिन दो दिन लगे तब भी लौटकर के वहीं आता है। भारत वर्ष में कहीं भी चला जाये लौटकर के अपने घर ही आ जाता है। चाहे वह धर्म के निमित्त से बाहर जाता है या व्यापार के निमित्त से, चाहे रिश्तेदार संबंधियों के यहाँ जाता है या मित्रों के यहाँ किंतु लौटकर के वहीं आ जाता है, क्यों? क्योंकि स्थान विशेष के प्रति, व्यक्ति विशेष के प्रति उसका तीव्र राग है। उस तीव्र राग के कारण वह पुनः–पुनः वहीं पहुँच जाता है।

राग की रस्सी से, राग के बंधन में पड़ा हुआ जीव निरंतर कर्मों को भी बांधता है और वर्तमान काल में भी बंधा हुआ है। जो जीव राग से रहित है, विरक्त है, विरागी है, अनासक्त है उसे कोई भी वस्तु, कोई भी व्यक्ति, कोई भी स्थान, कोई भी पर्याय बांधती नहीं है। जो अनासक्त होता है, तटस्थ होता है, विरक्त होता है, वैरागी होता है वह सबके प्रति समभाव रखता है उसके लिये न कोई अच्छा, न कोई बुरा। उसे कुछ न चाहिये, जो मिला है उसके प्रति कोई गिला शिकवा नहीं, नहीं मिला उसके प्रति भी तीव्र आसक्ति नहीं। मिल गया तो उसे भी अनासक्त भाव से सेवन कर रहा है, नहीं मिला तो उसके प्रति रुदन नहीं कर रहा है।

जो विरक्त है वह कर्मों से मुक्त होने में समर्थ है। आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी जी ने लिखा है–कि ये मैं नहीं कह रहा, जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है–'एसो जिणोवदेसो' इस प्रकार का जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है। 'तम्हा कम्मेसु मा रज्जह' इसीलिये कर्मों में राग मत करो। राग करोगे तो बंध को प्राप्त करोगे। निदान क्या है? वह और कुछ भी नहीं किसी पर्याय विशेष के प्रति तीव्र राग की परिस्थिति है। जिसका पाप के प्रति राग है तो वह पाप का बंध करते हुये पाप का फल

भोगने के लिये दुर्गति में जाता है। जिसका सद्कार्य के प्रति, धर्म के प्रति, धर्मात्मा के प्रति राग होता है तो वह धर्मात्माओं के बीच में पहुँच जाता है। जिस प्रकार जल बहकर नीचे की ओर जाता है, अग्नि की शिखा ऊपर की ओर जाती है, हवा तिरछी बहती है उसी प्रकार व्यक्ति अपने–अपने पुरुषार्थ और भाव के अनुसार भिन्न–भिन्न गतियों में जाता है, अनेक प्रकार की पर्यायों को प्राप्त करता है।

महानुभाव! तो राग ही बंध है, क्योंकि जब तक राग रहता है तब तक द्वेष भी नियम से रहता है। राग के बिना द्वेष अकेला रहता नहीं है जैसे दिन के बिना रात्रि नहीं रहती, रात्रि के बिना दिन नहीं रहता ऐसे ही राग और द्वेष हैं। जैसे नदी के दो किनारे होते हैं, जैसे शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष होता है, जैसे सिक्के के दो पहलू होते है, एक दीवार के दो सिरे होते हैं ऐसे ही राग द्वेष को मानना चाहिये। जहाँ राग है वहाँ द्वेष जरूर है, जहाँ द्वेष है वहाँ राग जरूर है इसलिये कहा कर्मों में राग मत करो, कर्म के फलों में राग मत करो, क्योंकि पुण्य–पाप का फल अतिथि की तरह जीवन में आया है और चला जायेगा। कोई भी अतिथि शाश्वत विराजमान नहीं रहता है।

आपके घर आया मेहमान चाहे अच्छा हो या बुरा हो, चाहे तुम्हारे लिये कोई gift आदि लाया हों या तुम्हारे यहाँ से कोई gift आदि विदाई लेकर जा रहा हो दोनों प्रकार के मेहमान देकर के जाने वाला या लेकर के जाने वाला कुछ समय में ही चले ही जाते हैं। पुण्य भी देकर के जाता है पाप भी देकर के जाता है। पुण्य इष्ट वस्तु को देकर के जाता है। तो पाप अनिष्ट कारक वस्तु को देकर के जाता है जाते दोनों है रूकता कोई नहीं इसलिये इनमें और इनके फलों में हर्ष विषाद मत करो।

पुण्यपाप फल मांहि हरष बिलखो मत भाई।
यह पुद्गल परजाय उपज विनसे थिर नाँही।।

पुण्य पाप के फल में न हँसो, न रोओ। जो पाप में फूलता है पुण्य में फूलता है नियम से संसार के झूले में झूलता है। इसलिये आचार्य महोदय कह रहे हैं कि वास्तव में बंधा हुआ व्यक्ति कौन है? तो लिखा है–

बद्धो हि को यो विषयानुरागी, का वा विमुक्तिः विषये विरक्तिः।
को वास घोरो नरकः स्वदेहः, तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति।।

आचार्य महाराज ने इस काव्य के माध्यम से चार बातें कहीं – प्रश्न ही यहाँ उपस्थित है और प्रश्न के साथ–साथ उत्तर भी उपस्थित है। प्रश्न भी चार किये उत्तर भी चार दिये। पहला प्रश्न किया–बंधा हुआ कौन है? दूसरा प्रश्न किया –विमुक्त कौन है? तीसरा प्रश्न किया नरक क्या है? चौथा प्रश्न किया स्वर्ग क्या है? इन चारों का उत्तर भी संक्षेप में दिया है।

'बद्धो हि को'–संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है जो बंधा हुआ है? यहाँ आचार्य महाराज की दृष्टि में जो रस्सी से बंधा है वह बंधा नहीं है, जो सांकलों से बंधा है वह बंधा नहीं है जिसके हाथों में हथकड़ी पैरो में बेड़ी पड़ी है उसको बंधा मत कहो, जो व्यक्ति अन्य किसी प्रकार से बंधा हुआ है चाहे लकड़ी का साँचा बनाकर उसे फंसा दिया हो, खोड़ा नाम की एक वस्तु जिसमें व्यक्ति का पैर फँसा दिया और लकड़ी फँसाकर उसमें दूसरी लकड़ी फंसा दी उसमें, बंधा व्यक्ति उससे बाहर जा नहीं सकता। तो ये सब बंधा हुआ होना कोई बंधन नहीं है। कोई कहता है प्रेम का बंधन सबसे बड़ा होता हैं, स्नेह का बंधन है, संकल्प का बंधन है किंतु आचार्य महोदय की दृष्टि में सबसे बडा बंधन कोई है जिसे तोड़ना बड़ा कठिन होता है तो वह है मोह का बंधन।

व्यक्ति रस्सी को तोड़ सकता है, सांकलों को तोड़ सकता है, लकड़ियों के बंधन को तोड़ सकता है, दीवारों को तोड़कर भी मुक्त हो सकता है किंतु जो मोह के बंधान में पड़ा है वह एक कदम भी आगे चल नहीं सकता। अद्रि कुमार को उसके पुत्र ने सूत के कच्चे धागे से बारह अंटे देकर के बांध दिया। वह मुनि महाराज अद्रि कुमार जो ऋद्धि के बल से, हाथी की सांकलों को दृष्टि से तोड़ सकते थे, वे उस कच्चे धागे को तोड़ने में असमर्थ हो गये। क्योंकि वे कच्चे सूत के धागे मोह के थे। उसके बेटे ने ही कच्चे धागे से बांधा था। वह टूट जाता किन्तु मोह आड़े आ गया। कई राजा–महाराज अपनी पत्नी में आसक्त रहे, दीक्षा नहीं ले पाये और भोगों में डूबे रहे, आयु पूर्ण हो गयी और दुर्गति के पात्र बन गये।

तो बंधन बद्ध कौन है? सांकल से बंधा व्यक्ति भी अन्यत्र जा सकता है, रस्सी से बंधा व्यक्ति भी अन्यत्र जा सकता है। किंतु जो विषयों के अनुराग से बंधा है, जो मोह से बंधा हुआ है उसे कहीं भी ले जाओ, उसका शरीर दूर भी पहुँच जाये फिर भी उसका मोह का बंधन बंधा रहता है। पुष्पडाल को जब तक यथार्थ वैराग्य नहीं हुआ तब तक मोह के बंधन से बंधे हुये वे अपनी पत्नी के इर्द–गिर्द ही रहे, मन वहीं रहा चाहे तन से साधना कहीं भी करते रहे पर 12 वर्ष तक मन राग से आपूर्ण रहा। यहाँ पर आचार्य महोदय ने सबसे बड़ा बंधन मोह का बंधन माना है, विषयों की आसक्ति का बंधन माना है। ये बंधन व्यक्ति तोड़ दे तो उस व्यक्ति को संसार का कोई भी बंधन बांध नहीं सकता, उस आत्मा को संसार में रोक नहीं सकता। यहाँ तक कि शरीर का बंधन भी नहीं। वज्रर्षभनाराच संहनन से युक्त शरीर में आत्मा निवास करे तब भी वह संहनन आत्मा को शरीर में रोक नहीं सकता। यदि राग का बंधन टूट गय, विषयों का बंधन टूट गया,

द्वेष का बंधन टूट गया तो निःसंदेह उस बंधन से रहित आत्मा मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है और जो स्वतंत्र है, किसी बंधन से नहीं बंधा, एकदम स्वतंत्र है उसके बावजूद भी यदि राग का बंधन है तो वह शुभ गति को भी प्राप्त नहीं कर सकता।

महानुभाव! द्वितीय प्रश्न के उत्तर में कहा–'का वाविमुक्तिः मोक्ष क्या है! आचार्य महोदय के शब्दों में विषये विरक्तिः विषयों में जिसका विरक्ति भाव है, स्पर्शनइंद्रिय, रसना इंद्रिय, घ्राण इंद्रिय, चक्षुइंद्रिय व कर्ण इंद्रिय इन पंचइंद्रियों के विषयों से जो विरक्त है, वह विमुक्त। संसार में अनेक प्रकार के विषय विद्यमान हैं उस व्यक्ति के सामने सहजोपलब्ध विषय विद्यमान हैं किंतु फिर भी उसका मन उन सब से विरक्त है। जो विरक्त है समझो मुक्त हो गया, जो विरक्त नहीं हुआ वह चाहे कितना भी तप करे, चाहे कितना भी त्याग साधना करें, यदि अंदर का राग कम नहीं हुआ तो मुक्त नहीं हुआ। राग ही तो बंधन है, साधना और है क्या? राग को घटाना, विराग को बढ़ाना, वीतराग दशा में पहुँच जाना यही तो मुक्ति है। यदि राग को नहीं घटा पाया तो क्या साधना हुयी? राग जटिल हो गया, मोह जटिल हो गया तो केवल साधु का भेष धारण करके कल्याण थोड़े ही हो जाता है। यदि मोह नहीं घटाया तो क्या? मोह नहीं घटाया तो घर में रहो या घर के बाहर इससे क्या फर्क पड़ता है। मोह घटा दिया तो बंधनों से मुक्ति हो सकती है। तो मुक्त वही है जो विषयों से विरक्त हो गया।

भरत चक्रवर्ती राज्य में रहते हुये भी विषयों से विरक्त रह दीक्षा लेते ही मुहूर्त्त प्रमाण काल के अनंतर केवलज्ञानी हो गया और एक व्यक्ति सुदीर्घ काल तक यदि विषयों में अनुरक्त है, तो साधना करने के बावजूद भी वह अपनी आत्मा को कर्मों से मुक्त नहीं कर पाता। तो संक्षेप में यही है कि आसक्ति बंधन है और विरक्ति मुक्ति है।

तृतीय प्रश्न किया–'कोवासधोरो नरकःस्वदेहः' संसार में नरक क्या है? शास्त्रों में पढ़ा है कि अधोलोक में नरक है वहाँ नरक की 7 भूमियाँ है जहाँ नारकी जीव रहते हैं किन्तु दूसरी बात कही, यहाँ जीवित रहते हुए नरक क्या है? तो वह है 'स्वदेह' अपना शरीर। जब रोगी हो जाये, अपने आप उठ न सको, बैठ न सको, लेट न सको, करवट न ले सको, अपने आप स्वतः भोजन ग्रहण न कर सको, न शुद्धि कर सको, भोजन नलियों से जा रहा है, वेन्टीलेटर पर पड़े है कृत्रिम श्वास फेफड़ों तक भेजी जा रही है, अपने शरीर के मलों का त्याग नहीं किया जा रहा, सामर्थ्य नहीं है नली पड़ी है, नासिका में मुख में अन्य–अन्य स्थानों में नली पड़ी है, कान से सुनाई नहीं दे रहा, तो यह शरीर क्या है? यह आत्मा उस रोगयुक्त शरीर में पड़ी हुयी है व नरक जैसा अनुभव कर रही है। नरक में जब दुःख भोगेगी तब भोगेगी अभी तो शरीर ही ऐसा लग रहा है जो सबसे बड़ा नरक है। जहाँ मृत्यु तो नहीं हो रही किंतु जी भी नहीं पा रहा है। नरक में भी नारकी बहुत दुःखी होता है। निःसीम दुःख है किन्तु मृत्यु को प्राप्त नहीं कर पाता। जब शरीर में रहकर मृत्यु प्रिय लगे पर मर न सकें तो उस समय वह शरीर उसके लिये नरक की तरह से है।

स्वर्ग क्या है–'तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति' स्वर्ग पद क्या है? जिसने तृष्णा का क्षय कर दिया उसके लिये वही स्वर्ग है। जो संतोष के साथ जीने वाला है किसी भी बात की ईर्ष्या नहीं, निरीह वृत्ति वाला है, वही व्यक्ति स्वर्ग जैसे आनंद का अनुभव करने वाला है। आचार्य महाराज ने ये चार बातें प्रश्न के रूप में प्रस्तुत की है। वृद्ध कौन है, मुक्त कौन है, नरक क्या है व स्वर्ग क्या है?

विषयासक्त व्यक्ति ही बद्ध है, विषयों से विरक्ति मुक्ति है, अपना शरीर पाप का फल भोग रहा हो तो वही सबसे बड़ा नरक

है और मन से तृष्णा नष्ट हो गयी हो तो वही स्वर्ग का सबसे बड़ा सुख है। आप सभी लोग भी विषयों के अनुराग से मुक्त होकर के विरक्त हो मुक्ति को प्राप्त करें और देह में आसक्त न होकर के देह के सुख को छोड़ते हुये मोक्ष सुख को प्राप्त करें, तृष्णा का क्षय करें तब निःसंदेह आत्म कल्याण आपके समीप है। आप सभी आत्मकल्याण के भाजक बनें हम आपके प्रति कल्याण की भावना भाते हैं। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

सम्यक्त्व के लक्षण

आत्महित की प्रवृत्ति करने की मुख्य शर्त है उस आत्मा का सम्यक्त्व श्रद्धा से युक्त हो जाना। जब तक जीवन में सम्यक्त्व या समीचीन श्रद्धा नहीं होती है तब तक वह जीव अपना हित करने में समर्थ नहीं होता या यूँ कहें कि आत्मकल्याण का मार्ग सम्यक्त्व के बाद ही प्रारंभ होता है। सम्यक्त्व का अर्थ होता है समीचीनपना। 'सम्यक्त्व' माने समीचीन, 'त्वं' माने पना। अनादि काल से आत्मा के साथ मिथ्यात्व लगा हुआ है 'मिथ्यापना' वह वस्तुओं का स्वरूप जैसा है वैसा जान नहीं पाया, मान नहीं पाया। वह उन पदार्थों को वैसा नहीं अनुभव कर पाया जैसा उनका स्वरूप था, यही मिथ्यापना है। जो वस्तु जैसी है वैसी नहीं देखते मिथ्यात्व के कारण, जैसी नहीं है वैसी दिखाई देती है मिथ्यात्व के कारण। उदाहरण के रूप में देखें एक चलता हुआ पंखा, उसे देखने पर ऐसा लगता है जैसे कोई गोल सर्किल है। किंतु गोल सर्किल है नहीं, उसमें तीन पांखुरी हैं, किन्तु वह तीन पांखुरी चलते में दिखती नहीं और गोल सर्किल जो दिखता है वह है नहीं। अथवा दूसरा उदाहरण देखें, एक बालक अग्नि के समीप बैठकर एक लकड़ी को अग्नि से जलाता है पुनः उस लकड़ी को द्रुतगति से गोल–गोल घुमाता है, जब वह गोल–गोल घुमाता है तो सामने वाला व्यक्ति देखता है तो उसे लगता है कि अग्नि का कोई गोल सा चक्र घूम रहा है किंतु ऐसा है नहीं, लकड़ी में अग्नि है गोल सर्किल नहीं है। जो है वह दिखाई नहीं दे रहा, जो नहीं है वह दिखाई दे रहा है।

दीपावली के अवसर पर आप लाइटिंग (Lighting) करते हैं वह अनेक प्रकार की होती है, उसमें नाना प्रकार की लाइट उभर कर आती है, कभी कमल का फूल बनकर आ रहा है, कभी

कोई जानवर चलते हुये दिखाई दे रहे हैं, कभी आपको ऐसा लगता है कोई ऊपर से नीचे चलता आ रहा है, कभी कोई नीचे से ऊपर चलता जा रहा है, तो उस लाईट में ऐसा लगता है कि इसमें अनेक प्रकार के चित्र हैं किंतु वहाँ हैं नहीं, दिख रहे हैं। जो है वह दिख नहीं रहा। अथवा कोई व्यक्ति प्रोजेक्टर के माध्यम से सामने दीवार पर चित्र दिखा रहा है। दीवार पर कभी शिखर जी का चित्र, कभी महावीर जी का चित्र, कभी चम्पापुर, पावापुर या स्पष्ट क्षेत्रों के चित्र दिखाई देते हैं। दीवार पर तरह–तरह के चित्र दिखाई दे रहे हैं आश्चर्य है किंतु प्रोजेक्टर बंद किया तो कुछ भी नहीं। दीवार पर अभी दिखाई दे रहा था, आँखे झूठ नहीं बोलतीं, आँखो ने देखा, किन्तु अब नहीं। उस समय भी जब प्रोजेक्टर बंद कर दिया जाये तो नहीं दिखेगा तो जो है दीवार पर वह तो दिख नहीं रहा और जो नहीं है वह दिखाई देता है।

मिथ्यात्व का यही आशय है आपको मालूम होगा अंतिम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी की समाधि के उपरांत चंद्रगुप्त, जो पूर्व में सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य थे जिन्होंने भारत वर्ष पर एक छत्र राज्य किया, अंतिम मुकुट बद्व राजा हुये, उन्होंने रात्रि के अंतिम प्रहर में सोलह स्वप्न देखे, आचार्य भद्रबाहु स्वामी से स्वप्न का फल पूछा जिन्हें सुनकर के उन्हें विरक्ति हुयी और उन्होंने संसार शरीर भोगों को त्यागकर के विरक्त होकर के यथाजात दिगम्बरी दीक्षा ले ली। आचार्य महाराज भद्रबाहु स्वामी ने अपना आचार्य पद और बारह हजार साधुओं का संघ का नेतृत्व करने के लिये चंद्रगुप्त से कहा। उन्होंने हाथ जोड़कर के विनम्रता से कहा–मैं आपके चरणों की सेवा करूँगा, ये आचार्य पद और 12,000 साधुओं के संघ के संचालन का कार्य आप किन्हीं अन्य शिष्य को दे दें मैं तो बस आपके चरणों की सेवा करना चाहता हूँ।

विशाखाचार्य को यह कार्य सौंप दिया, वे संघ लेकर के दक्षिण की ओर चले गये और भद्रबाहु स्वामी विध्यंगिरि चंद्रगिरि के जंगल में रह गये। चन्द्रगुप्त भी वहाँ रहे, अपने गुरू की सेवा की। भद्रबाहु स्वामी जी ने यम सल्लेखना ली, चंद्रगुप्त भी वहाँ रहे क्योंकि वहां जंगल में आहार चर्या का कोई निमित्त नहीं। एक दिन उपवास हुआ, दो दिन उपवास हुआ, तीन दिन उपवास हुये, भद्रबाहु स्वामी ने कहा–जंगल में जाओ कहीं आस–पास गाँव होगा चर्या करके आओ।

बुरु आज्ञा से वे चर्या के लिये गये तो एक यक्षिणी (वनदेवी) ने अकेले उन्हें भोजन दिया तो उन्होंने वह आहार नहीं लिया, वे आपस आ गये। गुरू महाराज से सब बातें कहीं, दूसरे दिन दूसरी दिशा में गये, वहाँ पर कोई भोजन सामग्री थाली में लगी हुई रखी। किंतु उन्होंने ग्रहण नहीं की, क्योंकि दिगम्बर साधु बिना पड़गाहन के नहीं लेते, विधिपूर्वक ही आहार ग्रहण करते हैं। तीसरे दिन गये, तो नवधा भक्ति से पड़गाहन किया किंतु एक महिला ही थी पड़गाहन करने वाली और कोई जंगल में नहीं था, तो वहाँ भी उन्होंने आहार ग्रहण नहीं किया लौटकर के आ गये। चौथे दिन गये तो वहां उन्हें एक नगर दिखाई दिया, वहाँ उनका पड़गाहन हुआ आहार हुआ। उन्होंने गुरू महाराज से सब बात कहीं। पुनः गुरू महाराज की समाधि हुयी और समाधि के उपरांत भी वे वहीं रहे, उनके चरणों को पत्थर पर उकेर कर के उनकी सेवा करते रहे और अपना धर्मध्यान करते रहे। 12 वर्ष बाद विशाखाचार्य संघसहित लौटे, उन्होंने गुरुमहाराज के चरणों की वंदना की। जब वे जाने लगे तो चंद्रगुप्त मुनि ने कहा–आप आहार चर्या करके जाना, विशाखाचार्य ने पूछा–यहाँ जंगल में आहार चर्या कहाँ होगी, उन्होंने कहा समीप में नगर है वहाँ चर्या हो सकती है।

प्रातःकाल 12000 साधुओं का संघ चर्या के लिये निकला सभी ने आहार किया, बहुत बड़ा नगर जिसमें लक्षाधिक श्रावक–श्राविका थे, जिसमें सभी साधुओं की निराकुल चर्या हुयी। वे सभी साधुवर्ग अपनी वसतिका में लौटकर के आ गये। एक क्षुल्लक जी महाराज ने कहा–'मुझसे भूल हो गयी मैं चौके से अपना कमण्डल लेकर नहीं आ पाया, संभव है मेरा कमण्डल वहीं रह गया। वे कमण्डल लेने उस स्थान पर गये जिस दिशा में उनका आहार हुआ था, वह जाकर के क्या देखते हैं कि जंगल में न कोई नगर है, न कोई श्रावक है, न श्राविका। सिर्फ जंगल ही जंगल है, पहाड़ ही पहाड़, नदी कंदरायें हैं। लौटकर के सब वृतान्त गुरु महाराज से कहा। उन्होंने कहा–संभव है चंद्रगुप्त की गुरुभक्ति को देखकर उनसे प्रभावित होकर के देवों ने यहाँ नगर बसाया और उन्हें 12 साल तक आहार दिया। वे आकर के अपनी माया से नगर बसाते हैं और आहार देकर के चले जाते हैं। जब आहार करने के लिये गये तब वहाँ नगर था, बाद में देखा नगर था नहीं।

नगर दिख रहा था, किंतु है नहीं, ऐसे ही इंद्रजालिक होता है वह अपने जादू से अनेक प्रकार के करतब दिखाता है, दृश्य दिखाता है वह इन्द्रजालिया दृश्य दिखाता है किन्तु वैसा है नहीं जो है वह दिखता नहीं है। तो मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा ही होता है संसार में जो यथार्थ है पदार्थ का स्वरूप का स्वरूप है वह जैसा है उसे वह वैसा दिखता नहीं। आत्मा के अहित विषय–कषायों को वह हितरूप मानता है, आत्मा के हित रूप वैराग्य और ज्ञान को अहित रूप मानता है।

त्याग और तपस्या को कष्टदायक मानता है, राग को, विषय सेवन को सुखदायक मानता है यह उसकी मिथ्या धारण हो जाती है। शरीर को आत्मा मानता है, आत्मा का ख्याल नहीं है और अन्य आत्माओं को अपना मानता है अपनी आत्मा को

भूल जाता है। वह इस चैतन्यमय अमूर्तिक आत्मा को जान नहीं पाता और मूर्तमान पुद्गल में अपनी आत्मा की कल्पना करता है। यह मिथ्यादृष्टि की मिथ्याबुद्धि होती है। आचार्य महोदय ने लिखा है श्रावकाचार में कि सम्यक्त्व/सम्यक्पना क्या है तो वस्तु का यथास्वरूप बताने वाले तीन आलम्बन हैं अरिहंत भगवान्, जिनेन्द्र प्रभु के मार्ग पर चलने वाले निर्ग्रंथ गुरु और उनके द्वारा प्रतिपादित दयामय धर्म अथवा उनकी वाणी, ये ही आलम्बन है इन पर यथार्थ श्रद्धान हो तन सम्यक्त्व प्रकट हो व मिथ्यात्व विलय को प्राप्त हो। आचार्य महोदय ने स्वयं लिखा है–

नास्ति चार्हत् परो देवो, धर्मो नास्ति दया परः।
तपः परंम च नैर्ग्रन्थयं एतत् सम्यक्त्वलक्षणम्।।

आचार्य महोदय कह रहे हैं–नास्ति च अर्हत् परो देवो' संसार में अर्हंत परमेष्ठी से बढ़कर कोई देव नहीं है, वे ही सच्चे देव है, वे ही परमार्थ भूत देव है। जैसा कि आचार्य समंतभद्रस्वामी जी ने भी कहा–

श्रद्धानां परमार्थानां–माप्तागम–तपोभृताम्।
त्रिमूढा पोढ़ मष्टांगं, सम्यग्दर्शनमस्मयम्।।

परमार्थभूत देव–शास्त्र–गुरु पर श्रद्धान करना, आठ अंग से सहित, अष्ट शंकादि दोषों से रहित, आठ मदों से रहित, छः अनायतनों से रहित, तीन मूढ़ता से रहित यह श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। उसी बात को यहाँ पर भी कहा कि तीनों लोकों में अर्हंत परमेष्ठी जैसा कोई सच्चा देव नहीं है। ये बात जो जानता है और अन्तर्रात्मा से मानता है, कि राग–द्वेष से मलिन कोई सच्चा देव नहीं है। अन्य कोई स्त्री, पुत्र, आभूषण, वस्त्र–शस्त्र से युक्त कोई सच्चा देव नहीं हो सकता, ये बात जिसकी आत्मा में विद्यमान हो जाये, जिसकी प्रवृत्ति में आ जाये कि वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी ही सच्चे देव हैं उसे सम्यक् श्रद्धावान् जानना चाहिए।

'धर्मोनास्ति दया परः' दूसरी बात ये उसके संज्ञान मे आ जाये कि दया से श्रेष्ठ कोई अन्य धर्म नहीं है। दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं। जिस धर्म में दया नहीं वह धर्म ही नहीं। जैसे जिस शरीर में प्राण नहीं तो वह जीवित ही नहीं, जीवित वही होता है जिसमें प्राण होते हैं। ऐसे ही जीवित धर्म भी वही है जिसमें दया हो। जिसमें दया नहीं है, वह धर्म मुर्दा है। मुर्दे अपनी आत्मा का हित कर नहीं सकते क्योंकि उनमें आत्मा ही नहीं है। ऐसे ही दया रहित धर्म किसी का कल्याण नहीं कर सकता क्योंकि वह धर्म ही नहीं है। धर्म से ही आत्मा का हित होता है और दया धर्म को विशुद्ध करने वाली होती है। ''धम्मो दया विसुद्धो''। दया की छलनी में छाना धर्म ही शुद्ध है।

जैसे आप शरीर को स्नान कराके शुद्ध करते हैं, बर्तनों को मांजकर के या अन्य–अन्य प्रकार से शुद्धी करते हैं। अथवा अन्य वस्तुओं की अन्य–अन्स प्रकार से शुद्ध करती है किन्तु धर्म जब भी शुद्ध होता है वह दया के छन्ने में छानकर ही शुद्ध होता है। जो दया के छन्ने से छनकर आया है वह धर्म है, जो नहीं छना वह शुद्ध धर्म नहीं हो सकता। इसलिये तीनों लोकों में और तीनों कालों में और प्रत्येक प्राणी के कल्याण में समर्थ एक ही धर्म है, दया धर्म। वही दया धर्म अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा। इसी धर्म के माध्यम से सबने अपनी आत्मा को परमात्मा बनाया। इसका उत्कृष्ट रूप अरिहंत अवस्था को देने वाला है और पुनः इसका फल अर्हंत अवस्था के बाद सिद्ध अवस्था को देने वाला है।

आगे कहा 'तपः परंम च नैर्ग्रथ्यं' जो निर्ग्रंथ अवस्था को ही परम तप मानता है इसके अतिरिक्त अन्य किसी को परम तप नहीं मानता। निर्ग्रंथ का आशय है जिसके पास ग्रंथि न हो, कोई भी गाँठ नहीं है कहीं भी गाँठ नहीं है। शरीर पर एक

धागा भी नहीं है, एक कोपीन भी नहीं है, बालों में भी कोई गाँठ जूड़ा आदि नहीं है, वह खुले आकाश में अपने दोनों हाथों को खोलकर के निरालम्ब खड़ा है, वही दो भुजा वाले परमेश्वर हैं, वही निर्ग्रंथ गुरु है उनका तप ही सच्चा तप है। जिसके अंतरंग में राग द्वेष की गाँठ नहीं, मोह की, काम वासना की गाँठ नहीं, क्रोधादि कषाय की गाँठ नहीं, जो अंतरंग की गाँठो से रहित हैं, मिथ्यात्वादि ग्रंथियों से जो रहित हो गया बहिरंग में भी कोई ग्रंथि या गाँठ नहीं, प्राकृत भाषा में उसे ''णिग्गंठ'' कहते हैं।

भगवान् महावीर स्वामी का जब मोक्ष हुआ तब गौतम बुद्ध का शिष्य आनंद बुद्ध के पास जाता है, कहता है ''भंते! निर्ग्रंथ पुत्र महावीर स्वामी निर्वाण को प्राप्त हो गये।'' गौतम को भी एक विकल्प आया वीर वर्धमान मोक्ष को प्राप्त हो गये और मैं यहाँ रह गया। जिस–जिस ने निर्ग्रन्थ अवस्था को स्वीकार किया है, उत्कृष्ट शुक्ल ध्यान में लीन हो कर्मों का क्षय कर उसी ने निर्वाण को प्राप्त किया है। निर्ग्रंथ अवस्था को प्राप्त किए बिना मोक्ष संभव नहीं, अतः निर्ग्रंथ तप ही सच्चा तप है। अन्य प्रकार के बाह्म तप अनशनादि छः तप, प्रायश्चित्त आदि अंतरंग छः तप, ये तप उसके साधक, सहयोगी हो सकते हैं किंतु ये तप तभी सम्यक् होते हैं जब निर्ग्रंथ अवस्था हो। इसीलिये 'तप' गृहस्थ जीवन में नहीं है, अव्रती के जीवन में तप नहीं है, देशव्रती के जीवन में तप नहीं है तप तो महाव्रती के जीवन में ही प्रारंभ होता है उससे पहले तप का प्रारंभ होता ही नहीं है।

यहाँ कह रहे हैं निर्ग्रंथ अवस्था का तप ही परम तप है। 'एतत् सम्यक् लक्षणं' इस प्रकार का जिसका श्रद्धान है वह ही सम्यक्दृष्टि है। जिसके चित्त में श्रद्धा नहीं है जो आत्मा के प्रति आस्थावान् नहीं है, जिसमें आस्तिक्य नहीं है वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। जो परमार्थभूत देव–शास्त्र–गुरु के प्रति श्रद्धावान् है जिसकी

अकाट्य श्रद्धा है कि वीतरागी भगवान् सच्चे देव हैं, अन्य देव सच्चा देव नहीं, परमार्थ में कारणभूत नहीं, मोक्ष देने में समर्थ नहीं, दया रूप धर्म ही सच्चा धर्म है, हिंसामय धर्म से आत्मा का हित नहीं हो सकता, आत्मा परमात्मा नहीं बन सकती, निर्ग्रंथ तप ही मुक्ति का कारण है, ''णग्गो हि मोक्खमग्गो' नग्नता के बिना मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये दिगम्बरत्व ही मोक्ष का कारण है व उसका साधन है। इस प्रकार जिसकी आत्मा में श्रद्धान है वही वास्तव में सम्यग्दृष्टि है।

आप सभी सम्यग्दृष्टि बनें, अपने आत्मा के प्रदेशों में सम्यक्त्व को प्रादुर्भूत करें, सम्यक्त्व को निष्पन्न करें। सम्यक्त्व बाहर से नहीं आता वह हमारी आत्मा में ही उत्पन्न होगा। उसी सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान आता है पुनः सम्यक्चारित्र को प्राप्त किया जाता है ये तीनों मिलकर के मोक्षमार्ग बनते हैं। आप सभी मोक्षमार्गी बनें और मोक्ष को प्राप्त कर सकें। ऐसी हम आप सभी के प्रति मंगलभावना भाते हैं, इन्हीं मंगलभावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

गुणी और अवगुणी

संसार में जितने भी चराचर जीव हैं वे सभी जीव यद्यपि सुख–शांति चाहते हैं कोई भी जीव दुःख और अशांति नहीं चाहता, किन्तु सुख और शांति की परिभाषायें सबकी अलग–अलग हैं इसलिये उनके पुरुषार्थ और कार्य भी अलग–अलग हैं, उनकी चेष्टायें और धारणायें भी अलग–अलग हैं, उनके मनोविचार और व्यवहार भी अलग–अलग हैं। कोई सुख मानता है विषयों की प्राप्ति में, तो कोई सुख मानता हैं धन की प्राप्ति में। कोई सुख मानता है स्त्री की प्राप्ति में तो कोई सुख मानता है श्रेष्ठ भोग भोगने में। कोई रसना इंद्रिय के पदार्थों में तो कोई स्पर्शन इंद्रिय के पदार्थों के भोगों में, कोई घ्राण इंद्रिय के पदार्थों को भोगने में सुख मानता है तो कोई चक्षु इंद्रियों के विषयों में सुख मानता है, कोई कर्ण इंद्रिय के पदार्थों में लीन होकर के सुख खोजना चाहता है तो कोई सुख कषायों के पोषण में मानता है। सबकी धारणायें अलग–अलग हैं इसलिये सबके फल भी अलग–अलग हैं व क्रियाकलाप भी अलग–अलग हैं।

जो जिसका गुण जानता है उसको आदर देता है, जिसका गुण नहीं जानता उसको आदर नहीं देता। जौहरी मार्ग में चलते हुये हीरे को उठा लेता है, तराश करके उसे बहुमूल्य बना देता है, उस मार्ग से चलने वाला कृषक उसे काँच का टुकड़ा समझ कर हीरा उठाता नहीं, सोचता है इस छोटे से काँच के टुकड़े से मैं क्या करूँगा और उसके पास पड़े पत्थर के टुकड़े को उठा लेता है सोचता है ये अच्छा खुरदरा पत्थर है पैर साफ करने के काम में आयेगा। दूसरा व्यक्ति वहाँ पड़े अच्छे पत्थर को उठाता है वह शिल्पकार था उसने सोचा इससे अच्छी मूर्ति बन सकती है, एक व्यक्ति वहाँ पड़ी चिकनी मिट्टी को उठा लेता है सोचता

है इसका अच्छा घड़ा बन सकता है। अगला व्यक्ति वहाँ पड़े एक अगले पाषाण को उठाता है कहता है यह तो कनक पाषाण है सोना निकल आयेगा। एक व्यक्ति वहाँ से जाता हुआ वहाँ की बालू को उठा लेता है और कहता है यहाँ की बालू से एक विशेष प्रकार की भस्म बन सकती है और उठाकर ले जाता है। जिसकी दृष्टि जिस पर है, जो जिसका गुण जानता है उसे उठा लेता है, जो जिसका गुण नहीं जानता वह उसे नहीं उठाता।

महानुभाव! गुणग्राहक दृष्टि सबके पास नहीं होती, जिसके पास गुणग्राहक दृष्टि है वह गुणों को ग्रहण करने में समर्थ होता है गुण ग्राहक दृष्टि नहीं तो वह गुण ग्रहण नहीं कर पाता। एक व्यक्ति सुख–शांति प्राप्त करने के लिये ध र्म की साधना करता है उसकी दृष्टि में धर्म है भगवान् की पूजार्चना, दूसरा व्यक्ति शांति प्राप्त करने के लिये धर्म करता है उसकी दृष्टि में धर्म है 'परोपकार', तीसरा व्यक्ति धर्म करता है सुख प्राप्ति के लिये उसकी दृष्टि में धर्म की परिभाषा है व्रत–उपवास, एक व्यक्ति धर्म करता है उसकी दृष्टि में धर्म है अणुव्रतों–महाव्रतों का परिपालन करना। अगले व्यक्ति के चित्त में धर्म की परिभाषा है शास्त्रों का स्वाध्याय करना, एक व्यक्ति धर्म मानता है व्यसनों का त्याग, अगला व्यक्ति मानता है कषायों की मंदता, वह कषायों को मंद करके धर्म करना चाहता है।

एक व्यक्ति धर्म मानता है अपनी माता–पिता की सेवा करना, एक व्यक्ति धर्म मानता है गुरूजनों की सेवा करना, एक व्यक्ति धर्म मानता है तीर्थ यात्रा करना, एक व्यक्ति धर्म मानता है गरीबों की सेवा करना, एक व्यक्ति मानता है मुनिमहाराज को आहारादि दान देना, एक व्यक्ति धर्म मानता है भगवान् की मूर्ति बनवाना, मंदिर बनवाना। एक व्यक्ति शास्त्रों का प्रकाशन करने को धर्म मानता है एक व्यक्ति कन्याओं के लिये उचित शिक्षाओं

को देने की व्यवस्था करने को धर्म मानता है। सब व्यक्ति अपने–अपने अनुसार धर्म कर रहे हैं और सब उसको धर्म मान रहे हैं उसके माध्यम से सुख शांति प्राप्त करना चाहते हैं। किंतु जिसकी दृष्टि में जो चीज महत्वपूर्ण है वह उसी में लगा है।

एक श्रवणकुमार की तरह से अपने माता–पिता की सेवा में लगा है उसे विश्वास है माता–पिता की सेवा करने से सुख मिलेगा शांति मिलेगी, शरीर निरोगी मिलेगा, यश प्रतिष्ठा मिलेगी, जो मैं चाहूंगा सो मिलेगा। एक व्यक्ति निर्धन था, फलों का ठेला लगाता था सुबह से शाम तक फल बेचता था पेट भरने लायक उसके पास पैसे आ जाते। उसके घर में वह और उसकी वृद्ध माँ थी। माँ का स्वास्थ्य थोड़ा प्रतिकूल हुआ माँ ने बेटे से कहा–मैं चाहती हूँ कि तू मेरे पास रह, क्योंकि मुझे अब भरोसा नहीं है कि अब मैं कब चली जाऊँ, मेरे प्राण तेरे सामने निकलें, मेरी अंतिम श्वाँस तेरी गोदी में निकले। तूने पहली श्वाँस मेरी गोद में ली, मेरी अंतिम श्वाँस तेरी गोद में निकले इसलिये तू मेरे पास रह।

उसने कहा माँ मैं समझता हूँ कि तुम मुझे कितना चाहती हो, मैं भी तुम्हें बहुत चाहता हूँ किंतु मैं आपके पास रहता हूँ तो अपना पेट कैसे भर सकूँगा, कैसे तुम्हारे पेट भरने के लिये आजीविका चला सकूँगा, कैसे आपके लिये औषधि ला सकूँगा। मेरे लिये ठेला लगाना जरूरी है। मेरे पास कोई बहुत बड़ी फैक्ट्री तो है नहीं जो बंद कर दूँ, दुकान है नहीं जो नौकरों के भरोसे छोड़ दूँ, माँ मैं कैसे करूँ। माँ ने कहा–बेटा! भगवान् सबकी रक्षा करते हैं, वे सबका ध्यान रखते हैं वे तेरा भी ध्यान रखेंगे। माँ वे क्या ध्यान रखेंगे, मैं चौराहे पर ठेला लगाता हूँ, यदि 1 मिनट के लिये भी इधर–उधर होता हूँ तो कोई भी राहगीर फल अपनी झोली में डालकर चलता बनता है, मैं वहाँ नहीं रहूँगा तो मेरा काम ही रुक जायेगा और हम दोनों ही भूखे रहेंगे।

माँ ने लंबी श्वाँस ली पुनः वह बोली–बेटा! तू चिंता न कर, मुझसे भगवान् ने कह दी है वे तेरा ध्यान रखेंगे। माँ दुनिया में सभी लोग कहते हैं भगवान् ध्यान रखते हैं पर भगवान् किसी का ध्यान रखने आते नहीं हैं। उनके होते हुए व्यक्ति मर जाता है, व्यक्ति पिट जाता है, चोरी भी हो जाती है, डाके भी डाले जाते हैं सब कुछ हो जाता है। उसने कहा बेटा–मेरी गारण्टी है मैंने भगवान् से बात कर ली है तेरा एक पैसे का भी नुकसान हो जाये तो मैं जानूँ। ठीक है माँ, आप ऐसा कहती हो तो मैं ऐसा ही कर लेता हूँ।

वह बालक अपने ठेले पर अपने फल रखकर प्रतिदिन की तरह जहाँ लगाता था वहाँ ठेला ले जाता है और वहाँ पर एक बोर्ड लगा देता है उसमें लिखा था–आम इतने रू. किलो, सेब इतने रू. किलो, मौसमी आदि फलों के रेट लिख कर वहाँ से चला आता हे। वहाँ लिख दिया यहाँ तराजू बाट रखा है, आप अपने हिसाब से ले लेना, पैसे यहाँ जो चद्दर बिछी है उसमें रख देना, मैं माँ की सेवा में जा रहा हूँ और वह ठेला खड़ा करके चला गया। वहाँ दूसरे बोर्ड पर लिख दिया भगवान्! आप ही देखना। लोग वहाँ पर आते, देखते ठेले पर कोई नहीं। वहाँ लिखा था–भगवान्! आप ही देखना। कोई भी ग्राहक आता, देखता यहाँ कोई भी नहीं, भगवान् यहाँ देख रहे हैं। यहाँ फल रखे हैं, फलों के रेट भी लिखे हैं, एक व्यक्ति आया, उसने फल लिये, सोचा फल चुपचाप ज्यादा ले लूँ पर उसने देखा ऊपर लिखा है भगवान् देख रहा है।

यह पढ़कर उसने कहा मैं चोरी नहीं करूँगा और ईमानदारी से उसने उतने ही फल लिये और अपने झोले में डाल लिये व पैसे भी चद्दर के नीचे रखकर चल दिया, सुबह से शाम तक यह क्रम चला। शाम को वह व्यक्ति ठेला लेने गया, तो देखता

है कि उसके ठेल के लगभग सब फल बिक गये हैं जो नहीं बिके वे फल रह गये है। और चद्दर के नीचे सब पैसे रखे हैं। दूसरे दिन भी ऐसा ही किया, दूसरे दिन उसने एक काम और किया कि यदि आपको फलों की आवश्यकता है तो इस कॉपी पर अपना नाम लिख देना और उधार भी लेना चाहें तो बाद में पैसे ले आना, मुझे ऐसी कोई चिंता नहीं है और यदि आपको फलों की ज्यादा आवश्यकता हो तो फिर मैं आपके लिये फल मंगवा दूँगा, आप इस पर लिख देना। किन्तु मैं माँ की सेवा में संलग्न हूँ इसलिये मैं नहीं आ सकूंगा आप अपने फल ले जाना।

दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ, देखा कि माँ की सेवा में लगा है। भगवान् देख रहा है फल ले जाने वाले फल ले गये सब फल बिक गये और पैसे वहाँ रखे हैं। आज तो और आश्चर्य हुआ कि पैसे जब उसने देखे तो जितने के फल बिके थे उससे ज्यादा पैसे थे वे पैसे अलग से रखे थे, वहाँ पर लिखा था—ये पैसे हम तुम्हारी माँ के इलाज के लिये रख रहे हैं आप ले लेना, चिंता नहीं करना। एक व्यक्ति ने उस डायरी में अपना फोन नंबर लिख दिया और लिखा कि आपको अपनी माँ के उपचार के लिये औषधि की आवश्यकता पड़े तो हमसे सम्पर्क कर लेना, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

दो चार दिन हुये, लोगों को भी बड़ा आश्चर्य होता। एक दिन Unknown व्यक्ति वहाँ से गुजरा। वह देखता है कि यहाँ ठेला रखा है उस पर फल हैं वहाँ फलों के रेट लिखे हैं। लोग आ रहे हैं ले जा रहे हैं बेचने वाला व्यक्ति यहाँ कोई नहीं है, वह बहुत देर तक देखता रहा, सुबह से शाम हो गयी कि ये ठेला किसका है। जब बहुत देर तक कोई नहीं आया, सूर्यास्त हो गया 7—8 बजे गये अंधकार हो गया, आकाश में बादल छा गये, बारिश होने लगी। वह व्यक्ति अपनी ठेले को लेने के लिये

बरसते पानी में आया, पुनः अपने ठेले को ले जा रहा था, तो जो व्यक्ति सुबह से देख रहा था देखते–देखते रात के 9 बज गये। वह व्यक्ति छत से खड़ा होकर देख रहा था। ठेले वाले को देखते ही उसने आवाज लगायी ठहरो! कौन लेकर जाता है इस ठेले को, ये किसका है और तुम क्यों इसे ले जा रहे हो, कौन हो तुम? वह बोला यह मेरा ही ठेला है सुबह रख जाता हूँ शाम को ले जाता हूँ। पूछा क्यों? उसने पूरी बात बतायी। मेरी माँ अस्वस्थ है उसकी सेवा में संलग्न हूँ तो मैं ठेला छोड़ नहीं रहा था। मेरी माँ ने कहा भगवान् सबका ध्यान रखता है। तू ठेला छोड़ दे, तेरा एक पैसा भी कम हो जाये तो मुझसे कहना–तो तब से मैं नित्य माँ की सेवा में हूँ।

माँ का शरीर बहुत क्षीण काय हो रहा है कब चली जाय कह नहीं सकता, और कहते–कहते उसकी आँखों में आँसू आ गये। उस सेठ ने कहा–धन्य है तेरी मातृ भक्ति। बोला मैं नहीं जानता मैंने तो माँ की बात पर विश्वास किया, मेरा काम माँ की सेवा करते हुये। वैसा ही चल रहा है मैं जितना ठेले पर खड़े होकर दोपहर में श्रम करता था, शायद उस समय मेरे पास इतना पैसा नहीं आ पाता था जितना पैसा आज मेरे पास आ रहा है। अब मुझे कोई चिंता नहीं, मैंने भगवान् के भरोसे छोड़ दिया, अब भगवान् देख रहा है अब तू ही देख, जो तुझे देना है दे दे, जो लेना है ले ले, सब तेरे ही भरोसे है।

महानुभाव! कहने का आशय यह है कि जिसे जिसमें अच्छाई दिखाई देती है उसके लिए वही धर्म है उसे अपनी माँ की बात में विश्वास हो गया मातृभक्ति पर विश्वास हो गया इसलिये माँ की सेवा करने लगा। ऐसे कितने पुत्र हैं जिनकी माँ तो है पर माँ की सेवा करने का समय नहीं है। माँ को छोड़कर के देश और विदेश में कहीं पर भी वे हैं, वहाँ जाकर के लाखों–करोड़ों

कमा रहे हैं किंतु इतना कमाने के बाद भी सेवा नहीं कर पा रहे। किसी को attack पड़ गया, कोई accident में मर गया, कोई अन्य प्रकार से दुःखी है, कोई पत्नी से दुःखी है, किसी के बच्चे नहीं, किसी को कोई परेशानी है।

महानुभाव! कोई व्यक्ति धन से सुखी होना चाहता है तो कोई धर्म से। जो मातृ सेवा का फल जानता है उसे मातृ सेवा से भी बहुत बड़ी सफलता की प्राप्ति हो जाती है, पितृ भक्ति का फल जानता है तो उससे उत्तम फल प्राप्त कर सकता है, जो प्रभु भक्ति का फल जानता है वह उससे उत्तम फल प्राप्त कर सकता है, नीतिकार कहते हैं–

गुणिनि गुणज्ञो रमते नागुणशीलस्य गुणिनि संतोषः।
अलिरेतिवनात्कमलं न दर्दुरस्त्वेकवासोऽपि।।

गुण का जानकार ही गुणी मनुष्य में प्रेम करता है, गुण रहित मनुष्य को गुणी मनुष्य में संतोष नहीं होता। भ्रमर वन से कमल के पास आता है परन्तु मेढंक एक तालाब में निवास करने पर भी कमल के पास नहीं जाता।

जो गुणवान् है वह गुण में रमण करता है, अवगुणी व्यक्ति को गुणों में संतोष नहीं होता। गुणवान व्यक्ति गुणों को प्राप्त करके, गुणीजनों को प्राप्त करके महान संतोष को प्राप्त करता है। अवगुणी व्यक्ति अवगुणों को प्राप्त करके संतोष को प्राप्त करता है। क्योंकि विष्ठा के कीड़े को विष्ठा में आनंद आता है और मिष्ठान के कीड़े को मिष्ठान में आनंद आता है। मिष्ठान का कीड़ा विष्ठा में नहीं जाता, विष्ठा का कीड़ा मिष्ठान में नहीं जाता। अंगूर और आम को खाने वाला व्यक्ति नीम की निबोली नहीं खाता, जो नीम की निबोली खाने वाला है वह अंगूर नहीं खाता। काक नीम की निबोली को खाता है उसके गुण को जानता है, कोयल आम को खाती है।

एक व्यक्ति सज्जन पुरूष है, जो सबकी सेवा करता है उसे उसमें आनंद आ रहा हैं दूसरा व्यक्ति उन्हीं सज्जनों को सता रहा है। एक उपसर्ग करने वाला है, एक उपसर्ग को दूर करने वाला है। एक गरीबों की सेवा कर रहा है, एक गरीबों का धन छीन रहा है। एक व्यक्ति किसी सती के शील की रक्षा कर रहा है, दूसरा क्रूर उस सती के शील को लूटने को तैयार है। एक व्यक्ति शिक्षा के लिये प्रबंध कर रहा है, दूसरा किसी की शिक्षा में बाधा डाल रहा है। एक व्यक्ति ज्ञान दान दे रहा है, एक ज्ञान में बाधा डाल रहा है। एक निःस्वार्थ भावना से औषधि दान दे रहा है। दूसरा उसे रोग दे रहा है, संसार में सब प्रकार के जीव हैं अपनी–अपनी रुचि के अनुसार सब कार्य करने वाले हैं

यहाँ पर आचार्य महाराज ने उदाहरण दिया **'अलिरेतिवनात्कमलं'** भौंरा कमल वन में पहुँच जाता है और कमल वन में आसक्त हो जाता है कि कमल बंद भी हो जाये पर उसमें से निकलता नहीं। चाहे वह कमल की गंध न मिले फिर भी वह कदापि विष्ठा पर नहीं बैठता। जो पुष्पों की गंध ग्रहण करने वाला भौंरा है वह सड़े–गले पदार्थों की सुगंध को ग्रहण नहीं करता। मेंढक वन में रहता है, कीचड़ में रहता है वह कभी भी कमल की गंध नहीं लेता और भौंरा कीचड़ में नहीं जाता जिसे जिसका गुण ज्ञात है उसे ही प्राप्त करता है। जो अवगुण का ग्राहक है वह अवगुण को प्राप्त करता है।

संसार में गुणीजनों को गुण और अवगुणियों को अवगुण मिल ही जाते है। जोंक गाय के स्तन पर चिपक कर भी खून पीता है और बछड़ा दूध पीता है। एक ही दृश्य से एक व्यक्ति अच्छाई ग्रहण करता है, एक व्यक्ति बुराई, एक ही घटनाक्रम से कोई व्यक्ति अपने जीवन की गति बदल देता है राह बदल देता है, दूसरा सही राह से भी भटक जाता है। दृष्टि का निर्मल करना

जरूरी है, दृष्टि निर्मल होते ही संसार में सब कुछ निर्मल दिखाई देता है और दृष्टि मलिन होती है तो गुणों में भी दोष खोज लिये जाते हैं, दृष्टि निर्मल होती है तो दूसरों में भी गुण दृष्टि गोचर हो जाते हैं।

महानुभाव! आप सभी दोष ग्राहक दृष्टि का परित्याग करके गुण ग्राहक दृष्टि बनायें, हंस की तरह दृष्टि बनायें। हंस मुक्ता चुगता है या दूध–पानी में से दूध को ग्रहण करता है पानी छोड़ देता है। बगुला पानी में से कीट पतंग–मकोड़ें व मछली खाता है उसका वर्ण भले ही हंस जैसा है किंतु वह कीड़े खाने वाला है और हंस चाहे भूखा मर जायेगा किंतु कीड़े नहीं खायेगा। ऐसे ही सज्जन पुरुष चाहे कितनी भी प्रतिकूलताओं का सामना करे किंतु कभी अनैतिक कार्य नहीं करेगा, पापों में संलग्न न होगा। दोष ग्राहक व्यक्ति पुण्य कार्य करने की अनुकूलता होने के बावजूद भी पाप कार्यों में ही प्रवृत्ति करेगा। प्रायःकर के संसारी प्राणियों का ऐसा स्वभाव है।

आप सभी लोग पापों से मुक्त हो, विरक्त हों, पुण्य कार्य में संलग्न हों, ऐसी हम आप सभी के प्रति मंगल भावना रखते हैं। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

कायोत्सर्ग

संसार में जितने भी जीव हैं वे किसी न किसी मार्ग पर गमन कर रहे हैं, या तो वे मोक्षमार्गी हैं या फिर संसारमार्गी। जो जीव संसार मार्ग में गमन कर रहे हैं उनके अनेक प्रकार के परिणाम होते हैं, अनेक प्रकार के विचार होते हैं, अनेक प्रकार के वचनालाप होते हैं, अनेक प्रकार की शरीर की प्रवृत्तियाँ होती हैं। संसार में भ्रमण करने के अनंत मार्ग हैं इसलिये अनंत जीव अनंत परिणामों को करके संसार परिभ्रमण कर सकते हैं। अनंतानंत जीवों के परिणामों में तरतम्यता है, किसी में कषायों की तीव्रता है, किसी के परिणाम कषाय के तीव्रतर रूप हैं, किसी के परिणाम तीव्रतम हैं, कोई जीव मंद, मंदतर व मंदतम परिणाम से युक्त हैं। असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम हो सकते हैं। उन परिणामों के परिणामस्वरूप वह जीव संसार में अनेक प्रकार की पर्यायों को धारण करता है।

दूसरा मार्ग है 'मोक्षमार्ग'। मोक्षमार्ग एक ही है, एक ही था और एक ही रहेगा। 'णग्गो हि मोक्खमग्गो' नग्नता ही मोक्ष का मार्ग है। क्योंकि अन्य सभी मार्ग जो हैं उनसे संसार की पर्याय प्राप्त होती हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव संसार की पर्यायों को प्राप्त करते है। देशव्रती भी संसार की पर्यायों को प्राप्त करते हैं, सरागी मुनि महाराज भी समाधि को प्राप्त करके संसार की ही पर्याय प्राप्त करते हैं। चाहे वैमानिक देवों में इन्द्र बनें या अहमिन्द्र बनें किन्तु सरागता के साथ मार्ग संसार का ही है। वीतरागता साक्षात् मोक्ष का मार्ग है। जो क्षपकश्रेणी वाले मुनिराज हैं वे नियम से उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेंगे। आठवें, नौंवे, दशवें गुणस्थान में कर्मों का क्रम से क्षय करते हुये 10 वें से 12 वें क्षीणमोह गुणस्थान में पहुँचेंगे 12वें गुणस्थान में ज्ञानावरण,

दर्शनावरण और अंतराय कर्म का क्षय करके अर्न्तमुहूर्त्त में 13वाँ गुणस्थान सयोगकेवली प्राप्त करेंगे। सयोगकेवली अवस्था में सुदीर्घ काल तक रह सकते हैं। उसके बाद 14वें गुणस्थान का काल अत्यल्प है और पुनः सिद्धत्व को प्राप्त करते हैं।

ग्यारहवें गुणस्थान में वीतराग दशा तो है किन्तु मोहनीय का उदय नहीं है, सत्ता में मोहनीय कर्म बैठा है। उदय में आकर के ग्यारहवें गुणस्थान से गिरने वाले मुनिराज भी सुदीर्घकाल तक लगभग अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल तक परिभ्रमण कर सकते हैं। तो साक्षात् मोक्ष का मार्ग यदि है तो वह है क्षपक श्रेणी वाले मुनिमहाराजों का। क्षायिक सम्यकदृष्टि भी उसी भव से मोक्ष जाये ऐसा नियम नहीं है उस भव से भी मोक्ष जा सकते हैं और तृतीय भव से भी अन्यथा चतुर्थ भव से तो नियम से मोक्ष जायेंगे ही जायेंगे। वे चौथे भव का उल्लंघन नहीं कर सकते। जिस भव में क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करना प्रारंभ होता है प्रतिष्ठापना होती है उस भव में मोक्ष जाने की संभावना अधिक रहती है।

क्षायिक सम्यदृष्टि को द्वितीय भव में मोक्ष नहीं होता, निष्ठापना चारों गति में कहीं भी कर सकता है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव जहाँ निष्ठापना करेगा नरक गति देव गति या तिर्यंच गति में मोक्ष नहीं है, मनुष्य गति में निष्ठापना करेगा तो भोग भूमि में करेगा, वहाँ से मोक्ष नहीं है। उसी भव से मोक्ष जायेगा तो कर्मभूमि का मनुष्य ही प्रतिष्ठापना करने वाला होता है। कदाचित् पहले आयु बांध ली है तिर्यंच या मनुष्यायु, बाद में क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त किया है तो फिर वर्तमान काल का भव, पुनः भोगभूमि का मनुष्य या तिर्यंच भव, वहाँ से फिर देव पर्याय का भव, फिर मनुष्य बनकर मोक्ष प्राप्त करेगा। नरक की आयु बांध ली है तो वहाँ से निकलकर मनुष्य ही होगा और उस भव से मोक्ष प्राप्त करेगा। देव अवस्था नरक अवस्था में गया है

तो तृतीय भव से मोक्ष प्राप्त करेगा और यदि भोगभूमि का तिर्यंच या मनुष्य हुआ है तो चतुर्थभव में मोक्ष प्राप्त करेगा। और कोई आयु नहीं बांधी है तो वह उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

तो साक्षात् मोक्षमार्गी तो क्षपक श्रेणी वाले मुनि महाराज हैं। फिर दूसरा मोक्षमार्गी क्षायिक सम्यग्दृष्टि को कह सकते हैं जो दो तीन या चार भव में मोक्ष प्राप्त करेगा। इसके उपरांत छठवें गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक मोक्षमार्गी तो है किन्तु नियामक संबंध नहीं है कितने भवों में मोक्ष प्राप्त करेंगे।

महानुभाव! मोक्ष मार्ग प्राप्त करने के लिये अत्यंत पाप प्रकृतियों को पहले दबाया जाता है, नष्ट नहीं कर पाये तो दबाया जाता है। अनादि मिथ्यादृष्टि जब सम्यक्त्व मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी की चार क्रोध, मान, माया, लोभ इन पाँच प्रकृतियों का उपशम करता है। सादि मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति व अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों का उपशम करता है तो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी 4 इन छः प्रकृतियो का उपशम कर क्षयोपशम सम्याग्दर्शन प्राप्त करता है। उसके बाद वह देशव्रती बने, महाव्रती बने, क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करे। पंचम गुणस्थान वाले श्रावक–श्राविका एकदेशमोक्षमार्गी हैं। चौथे गुणस्थान वाला मोक्षमार्ग के सम्मुख है मोक्षमार्गी नहीं।

आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी जी ने कहा कि मोक्षमार्गी कैसे होता है, मोक्षमार्ग का प्रारंभ कैसे होता है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के माध्यम से मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है। दूसरा कहा जो भव्य जीव संसार, शरीर, भोगों से विरक्त है और अपने स्वभाव को प्राप्त करने के लिये अपनी आत्मा के प्रति उत्सुक है तो वह मोक्षमार्गी बन सकता है। ज्यों–ज्यों पर पदार्थों के प्रति रुचि प्रीति कम होती है त्यों–त्यों आत्मा की प्रतीती होती है वह जीव मोक्षमार्गी बनता है।

यथा–यथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्वमुत्तमम्।।

जैसे–जैसे सहजोपलब्ध विषय रुचते नहीं, त्यों–त्यों आत्मानुभूति होती है, व्यक्ति मोक्षमार्गी होता है। अथवा जो व्यक्ति अपनी आत्मा के प्रति ज्यों–ज्यों कदम बढ़ाता है, अंतरंग में डूबता जाता है त्यों–त्यों बाह्मय पदार्थों से टूटता जाता है, छूटता जाता है और वह जीव मोक्षमार्गी बनता जाता है।

महानुभाव! आचार्य भगवन् वद्धकेर स्वामी जी ने मूलाचार में मोक्षमार्गी के बारे में कहा कि कौन है वह बताया–

काउसग्गं मोक्खपहे, देहसयं घादिकम्म अदिचारं।
इच्छामि अहिट्ठादुं, जिणसेविद देसिदत्तादो।।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं 'काउसग्गं' जिसने काया का उत्सर्ग किया है। यहाँ उत्सर्ग शब्द का अर्थ शरीर छोड़ना नहीं लिया, 'कायोत्सर्ग' का शाब्दिक अर्थ लिया है शरीर से ममत्व का त्याग करना यह काया का उत्सर्ग है। शरीर छोड़ने का नाम कायोत्सर्ग नहीं। तो शरीर से मोह, ममत्व का त्याग कैसे करना? जब शरीर से ममत्व का त्याग हुआ तो शरीर से पृथक् दिखाई देने वाली अन्य संसार की चेतन व अचेतन जितनी भी वस्तुयें हैं उन सब से भी ममत्व का त्याग होना अनिवार्य है क्योंकि शरीर से तो व्यक्ति का मोह रहता है वह शरीर का पोषण करता है, शरीर का ध्यान रखता है।

पहले व्यक्ति, जो शरीर के लिये प्रतिकूल है उनका त्याग करता है, आत्मा के लिये प्रतिकूल है उसका परित्याग करता है, मन के प्रतिकूल है उसका त्याग करता है, लोकव्यवहार के प्रतिकूल है उनका त्याग करता है फिर शनैः शनैः अनुकूल वस्तुओं का भी त्याग करता है। और फिर एक समय आता है

कि ममत्व त्याग करते समय चाहे कोई व्यक्ति, वस्तु शरीर के अनुकूल है या प्रतिकूल है वह उस समय उन सबका परित्याग करता है।

आचार्य भगवन् श्री अकलंक देच स्वामी ने राजवार्तिक में कहा है

''परिमितकालविषया शरीरे ममत्वनिवृत्तिः कार्योत्सर्गः।''

परिमितकाल के लिए शरीर में होने वाली ममत्व बुद्धि का त्याग करना कार्योत्सर्ग है। 'कायोत्सर्ग' के प्रयोजन बताते हुए वे कहते है–

''निःसंगत्व निर्भयत्व, जीवित रहते की आशा के त्याग, दोषो का उच्छेदन, मोक्षमार्ग की प्रभावना, एवं उसके निमित्त समर्पित रहने आदि की दृष्टि से कायोत्सर्ग करना आवश्यक है।

कायोत्सर्ग में निमग्न वे मुनिराज शरीर के प्रति भी निरीह होते हैं। श्रावक भी कायोत्सर्ग करने का अभ्यास करते हैं किंतु उसका पूर्ण अभ्यास बनता नहीं। वह कायोत्सर्ग की भावना भाता है, तीन श्वाँस और उच्छ्वास में एक बार णमोकार मंत्र पढ़ता है। इस प्रकार 27 श्वाँस और उच्छवास में 9 बार णमोकार मंत्र पढ़ता है, जिसे कायोत्सर्ग कहते हैं। णमोकार मंत्र पढ़ने का क्रम इस प्रकार से रखा है–'णमो अरिहंताणं' यह पद बोलते हुये श्वाँस ग्रहण करता है, 'णमोसिद्धाणं' पद बोलते हुये श्वाँस बाहर की ओर छोड़ता है। 'णमो आइरियाणं' पद का उच्चारण करते हुये श्वाँस ग्रहण करता है, 'णमो उवज्झायाणं' पद का उच्चारण करते हुये श्वाँस बाहर की ओर छोड़ता है। पुनः ''णमो लोए' इतना अर्द्धवाक्य बोलते हुये श्वाँस ग्रहण करता है 'सव्वसाहूणं' पदोच्चारण करते हुये श्वासं छोड़ देता है।

ये मूलपद पाँच हैं। आर्याछंद में बोलते हुये बीच में रुकता भी है। 'णमो अरिहंताणं' कहकर के बीच में थोड़ा शांत हुआ,

विकल्प शांत हुये और वह आत्मा के प्रति तत्पर हुआ, आत्मा के सन्मुख हुआ। 'णमो सिद्धाणं' कहते हुये पुनः उसने श्वाँस छोड़ दी और फिर थोड़ा सा रुक गया, 'णमो आइरियाणं' कहते हुये फिर रुकता है तो बीच–बीच में जो रुकता है उस समय किसी एक विचार में उसका मन स्थिर हो जाता है, किसी परमेष्ठी के ध्यान में एकाग्रचित् हो जाता है। तो कायोत्सर्ग करने वाला 27 श्वाँस और 27 उच्छ्वास में महामंत्र का जाप करता है।

तो कायोत्सर्ग में संलग्न व्यक्ति उस समय माना मोक्षमार्ग में संलग्न है। सच्चा कायोत्सर्ग तभी होता है जब शरीर आदि सभी पदार्थों से विरक्ति हो। यदि किसी वस्तु के प्रति आसक्ति है तो अभी देह से विरक्ति नहीं है। कायोत्सर्ग की अवस्था में वह मोक्षमार्गी कहलाता है। आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी जी ने भी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में सामायिक में निमग्न श्रावक के लिये कहा ''चेलोपसृष्ट मुनिरिव'' वह वस्त्र से युक्त मुनि के समान है। वह मुनि तो नहीं है बल्कि मुनि के समान भी नहीं है किंतु ये बताने के लिये कि कायोत्सर्ग का और सामायिक का कितना बड़ा महत्व है जिस समय श्रावक भी सामायिक कर रहा है तो उस समय मानो वह मोक्षमार्गी बन गया। शरीर में ममत्व का त्याग कर दिया, वह कायोत्सर्ग में संलग्न है तो मोक्षमार्गी है जैसे मुनिमहाराज आदि सभी पदार्थों से विरक्त होकर के मोक्षमार्गी बनते हैं वैसे वह श्रावक भी उस समय मोक्षमार्गी है क्योंकि उसके चित्त में किसी प्रकार की आकांक्षा, ईहा, इच्छा नहीं है। निर्णायक बुद्धि नहीं है समत्व भाव से युक्त है। यहाँ पर जो भी महानुभाव कायोत्सर्ग में संलग्न है उन्हें वट्टके स्वामी ने 'मोक्खपहे' वे मोक्षपथ में स्थित हैं ऐसा कहा हैं।

चाहे पूजा करने वाला व्यक्ति पूजा करके कोई वस्तु की आकांक्षा करे, दान देने वाला व्यक्ति भी कुछ माँग ले, तीर्थयात्रा

करने वाला भी उसका फल माँग ले किन्तु कायोत्सर्ग में कहीं कामना याचना नहीं होती है वहाँ तो सब पदार्थों से ममत्व का त्याग होता है, शरीर से भी ममत्व का त्याग होता है फिर किसी भी पदार्थ की अभीप्सा उसके मन में कैसे रह सकती है। तो कायोत्सर्ग करने वाला व्यक्ति मोक्षमार्ग में स्थित है। **''देहसयं घादि अकम्म दिचारं''** वह कायोत्सर्ग करने वाला जीव घातिया कर्म का विनाश करने में समर्थ होता है, कायोत्सर्ग करने वाला जीव व्रतों के समस्त अतिचारों का परिहार करने में समर्थ होता है। क्योंकि कायोत्सर्ग की भूमिका ऐसी है शरीर से ममत्व का त्याग है उस समय अपने जिनत्व का अनुभव करता है। कायो. त्सर्ग करने वाला भावी सिद्ध होता है जो कायोत्सर्ग नहीं कर सकता नियामक नहीं कह सकते वह भव्य ही हो अभव्य भी हो सकता है किन्तु कायोत्सर्ग करने वाला नियम से भव्य है और अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करेगा। यदि वह शरीर के प्रति निर्ममत्व भाव पैदा कर लेता है तो।

पुनः आगे कह रहे हैं कि कायोत्सर्ग घातिया कर्मों को तो नष्ट करता ही है, व्रतों के अतिचारों को दूर करता ही है और शरीर के रोगों को भी दूर करने वाला होता है। चित्त का शोधन करने वाला होता है। कायोत्सर्ग एक भक्ति है, स्तुति है वंदना है, एक भजन है, एक पाठ है, ध्यान का विषय भी है वह अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। **''इच्छामि अहिट्ठदुं''** मैं अभीष्ट पदार्थों को प्राप्त करने के लिये उनकी सिद्धि करने के लिये उस कायोत्सर्ग की इच्छा करता हूँ। क्योंकि कायोत्सर्ग के बिना अभीष्ट पदार्थ की सिद्धी नहीं होती। आप गृहस्थ लोग भी कोई कार्य सिद्ध करना चाहते हैं तो कायोत्सर्ग करने बैठ जाते हैं माला फेरने बैठ जाते हैं, जिससे पुण्य का संचय हो, पाप प्रकृतियाँ निर्जीर्ण हों अतः अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये भी भव्य जीव

कायोत्सर्ग करते हैं। तो जो कायोत्सर्ग करके माँगते हैं उन्हें वह मिल भी जाता है किन्तु यदि वे कुछ भी ना माँगे तो कायोत्सर्ग में मोक्षमार्गी भी होता है।

'जिणसेविद देसिदत्तादो' वह कायोत्सर्ग कैसा है? उस कायोत्सर्ग का सेवन जिनेन्द्र भगवान् ने भी किया है ऐसा नहीं कि कोई बिना कायोत्सर्ग के भगवान् बन गये। आज तक कोई भी व्यक्ति बिना कायोत्सर्ग के भगवान् नहीं बना, सिद्ध नहीं बना, अरिहंत नहीं बना। आज तक बिना कायोत्सर्ग के कोई आचार्य उपाध्याय, साधु नहीं बना। बिना कायोत्सर्ग के आज तक कोई श्रावक–श्राविका नहीं बने। बिना कायोत्सर्ग के आपके पूजा–पाठ धर्मध्यान भी नहीं होता। आप पहले कायोत्सर्ग करते हैं। तो कायोत्सर्ग जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा सेवित है जो पूर्व में संसारी प्राणी थे जो आज सिद्ध परमेष्ठी बने हैं या वर्तमान काल में जितने भी अरिहंत परमेष्ठी हैं, सभी ने कायोत्सर्ग का सेवन किया। शरीर से ममत्व का त्याग कर पद्मासन या खड़गासन में इस प्रकार निरीहवृत्ति से रहे कि शरीर के किसी एक रोम के प्रति भी कोई अनुराग नहीं ममत्व नहीं।

'देसिदत्तादो' जिनेन्द्र भगवान् के कायोत्सर्ग का उपदेश दिया है। क्योंकि 'मोक्खपहे' जो कोई भी अपनी आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थापित करना चाहता है वह अपने आप को कायोत्सर्ग में स्थापित कर दे तो मोक्षमार्गी बन सकता है, बिना कायोत्सर्ग के मोक्षमार्गी नहीं बनता। जैन दर्शन में कायोत्सर्ग तो बचपन से सिखाया जाता है। ज्यों ही बालक को बोध होता है तो कहते हैं सर्वप्रथम णमोकार मंत्र पढ़ो, श्वाँसोच्छ्वास से पढ़ो, विधिपूर्वक पढ़ो। विधिपूर्वक किया गया कायोत्सर्ग निःसंदेह कर्म क्षय का कारण है। कायोत्सर्ग भगवान् की वाणी है यदि अपना हित चाहते है तो कायोत्सर्ग करो। नियम भी लेते हैं तो पहले

कायोत्सर्ग, पूजा प्रारंभ करते हैं तो पहले कायोत्सर्ग, निष्ठापना की तो कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग तो प्रत्येक धर्म की क्रिया में किया जाता है इसलिये कायोत्सर्ग करने वाला व्यक्ति मोक्षमार्गी होता है। मैं भी अपने कार्य की सिद्धी के लिये कायोत्सर्ग को ग्रहण करता हूँ और कायोत्सर्ग के माध्यम से अपनी संक्लेशता दुभार्वनाओं का त्याग करते हुये अपने स्वभाव की ओर गति कर सकूँ इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

करणीय–अकरणीय

महानुभाव! संसार में जितने भी पदार्थ हैं वे पदार्थ एकान्ततः न तो उपादेय हैं और न एकान्ततः हेय हैं। कभी कोई पदार्थ उपादेय होता है तो कभी दूसरा पदार्थ उपादेय होता है। कभी कोई पदार्थ हेय होता है कभी कोई दूसरा पदार्थ हेय। व्यक्ति इन संसार के पदार्थों के स्वरूप को जब समझ लेता है तब अपने कार्य की सिद्धि करने के लिये उन पदार्थों का सदुपयोग करता है। जैसे कुंभकार कभी चाक को चलाने के लिये दण्ड को हाथ में उठाता है फिर कभी उसे रख देता है, कभी मिट्टी को उठाता है कभी उसे रख देता है, कभी धागे को उठाता है कभी उसे उठाकर रख दिया, कभी पानी हाथ में लगाता है फिर पानी को अलग कर देता है, ऐसा नहीं है कि चाक चलाने वाला कुंभकार दण्ड को हाथ में लेकर के चाक को घुमाता ही रहे, चाक को घुमाता ही रहेगा तो फिर मिट्टी के बर्तन कैसे बनायेगा और यदि मिट्टी को ही हाथ लगाये रहे, दण्ड को न उठाये तो चाक घूमेगा कैसे। तो दण्ड भी उसके घुमाने के लिये उपयोगी है और दण्ड को नीचे रखना भी जरूरी है। मिट्टी को हाथ लगाना भी जरूरी है और मिट्टी को छोडकर फिर चाक घुमाना भी जरूरी है। कभी कोई कलशा बन जाये या मिट्टी का बर्तन बन जाये तो धागे के माध्यम से काट करके वहाँ से उठाकर के नीचे रखना भी जरूरी है।

महानुभाव! ऐसे ही मनुष्यों के लिये कभी कोई चीज आवश्यक होती है कभी कोई चीज। बालकों को जो आवश्यक है संभव है वृद्धों को वह आवश्यक नहीं, जो वृद्धों को आवश्यक है संभव है बालकों को वह आवश्यक नहीं, जो युवाओं को आवश्यक है वह प्रौढ़ों को आवश्यक नहीं, प्रौढ़ों को जो आवश्यक है वह शायद युवाओं को आवश्यक नहीं। अलग–अलग स्थान पर अलग वस्तु

की अलग–अलग व्यक्ति को आवश्यकता पड़ती है। कभी कोई वस्तु उसकी दृष्टि में उपादेय होती है कभी कोई वस्तु उसकी दृष्टि में हेय होती है। वही वस्तु किसी स्थान विशेष, किसी समय विशेष पर उपादेय होती है वही वस्तु कभी समय निकलते ही हेय हो जाती है।

जब कोई व्यक्ति शादी करने के लिये जा रहा हो तब वह अपने सिर पर मोहर रखकर के जाता है, शादी हो जाये तब फिर उसी को तालाब में सिरा देता है। वैदिक परम्परा में देखा जाता है जब उनके पर्व आदि आते हैं तो गणेश पूजन आदि करने के लिय वे उनकी मूर्ति की स्थापना करते हैं पर्व के पश्चात् पुनः पानी में सिरा देते हैं। या पुष्प मालादि लाये उस समय बड़ी अच्छी तरह से रखते हैं काम होने के बाद जब वे पुष्पमाला सूख गयीं तो उनको उतार करके बाहर रख दिया। पहले दोने, पत्तल आदि बड़े संभालकर के लाये और जब उनसे काम निकल गया तो उठाकर फेंक दिया ऐसे ही मिट्टी के बर्तन आदि use & throw।

रोग होने पर वही औषधि उपादेय होती है और रोग ठीक हो जाने पर वही औषधि हेय जो जाती है क्योंकि जब रोग नहीं है तब उस औषधि को नहीं लगाया जाता डॉक्टर कहता है अब तुम्हारा घाव ठीक हो गया है। यदि अब औषधि लगाओगे तो नया घाव पैदा हो जायेगा। रोग ठीक हो गया है तो वह औषधि सेवन नहीं करना है वरना कोई दूसरी बीमारी हो सकती है।

वस्तु वही है कभी वह उपयोगी सिद्ध होती है कभी निरुपयोगी। तो किस समय कौन सी वस्तु उपयोगी है कौन सी दुरुपयोगी है इसको जानना भी बहुत आवश्यक है। यदि व्यक्ति इस बात को नहीं जान पाता है और वह सर्वथा उसको त्याग दे तब भी उसका काम चलता नहीं, सर्वथा उसको पकड़कर बैठ जाये तब भी वह लक्ष्य तक पहुँचता नहीं है। जैसे एक नाविक

नदी पार करने के लिये किनारे पर पहुँच गया, उसने नाव को पकड़ लिया, नाव में बैठ गया अब वह उस किनारे पर पहुँच गया किंतु फिर भी नाव में से उतरे नहीं, नाव को नहीं छोड़े, पकड़कर ही बैठा रहे तो उस किनारे तक नहीं पहुँच पायेगा। अब छोड़ना भी जरूरी है और पहले पकड़ना भी जरूरी था।

कोई व्यक्ति बस से, हवाई जहाज से या अन्य किसी वाहन से कहीं यात्रा करने जा रहा है तो वह पहले उस वाहन में बैठेगा भी, दूरी पार करने के लिये बैठना भी जरूरी है, पकड़ना भी जरूरी है और वहाँ पहुँच गया तो उसे छोड़ना भी जरूरी है। ड्राइविंग करते समय एक व्यक्ति ने अपनी बेल्ट लगायी फिर driving करता है जहाँ पहुँचना था वहाँ पहुँच गया अब बेल्ट को निकालना पड़ेगा ऐसा नहीं कि बेल्ट लगाये रखे, अगर लगाये रखेगा तो वहाँ जा ही नहीं पायेगा या स्टेयरिंग पकड़े हुये है और कहे उसे मैं पकड़े ही रखूँगा, मुझे सिखाया था कि उसे छोड़ना नहीं, और सामने देखते रहना। तो भैया! अब जहाँ तुम्हें पहुँचना था वहाँ तुम पहुँच गये, अब छोड़ दो।

इसी प्रकार मनुष्य के जीवन में अनेक वस्तुओं का व व्यक्तियों का समागम होता है किंतु कभी कोई वस्तु उपादेय होती है कभी वही वस्तु हेय होती है, रस्सी के माध्यम से बाल्टी से पानी कुएँ से निकाल लिया तो पानी निकालने के लिये बाल्टी में रस्सी को बाँधना भी जरूरी था अब पानी निकाल लिया तो बाल्टी में से रस्सी को खोलना भी जरूरी है। अब उसे बाँधकर ही नहीं रखा रहेगा। मनुष्यों के जीवन में भी कौन से पदार्थ की कहाँ आवश्यकता है, जिस व्यक्ति के पास इतना विवेक है वह संसार की प्रत्येक वस्तु से लाभ ले सकता है। जिसके पास विवेक नहीं है वह लाभ के स्थान पर उसी वस्तु से हानि भी उठा सकता है। जिस रोग में जो औषधि काम करती है उसी औषधि

का सेवन करेगा तो वह निरोगी हो जायेगा और इसके विपरीत औषधि का सेवन करेगा तो उससे रोग और बढ़ जायेगा। तो ये विवेक सबके पास नहीं होता है जिसके पास ऐसा विवेक है कि किस रोग में कौन सी औषधि काम करती है तब तो वह औषधि का लाभ ले सकता है अन्यथा नहीं।

इसी प्रकार संसारी प्राणियों के पास भी यह विवेक होना चाहिये कि किस वस्तु का हमें किस प्रकार से सदुपयोग करना है। जिस व्यक्ति के पास विवेक है उस व्यक्ति का जीवन सुखद है, शांतिमय है, स्वयं के लिये भी सुखद है और दूसरों के लिये भी सुखद है। वह स्वयं भी शांति का अनुभव कर सकता है व दूसरों को भी शांति दे सकता है किंतु जिसके पास ऐसा विवेक नहीं है तो वह स्वयं भी दुःखी रहेगा और दूसरों को भी दुःखी करता रहेगा आचार्यों ने कहा है–

विद्युत्चलं किं धन यौवनायुः दानं परं किञ्च सुपात्र दत्तं।
कंठैः गतैरप्यसुभिरकार्यं, किं किं विधेयं भजनं शिवार्चा।।

यहाँ चार प्रश्न किये और उन प्रश्नों के उत्तर भी उनमें दिये हैं। पहला प्रश्न किया–''विद्युत्चलं किं''–संसार में बिजली की चमक की तरह से नश्वर क्या है? आकाश में बिजली चमकी और नष्ट हो गयी ऐसा संसार में नश्वर क्या है? जिसे इस बात का ज्ञान होगा तो वह उस वस्तु का जल्दी सदुपयोग कर लेगा, जिसे ज्ञान नहीं है वह कहेगा चलो बाद में देख लेंगे तो वह उस वस्तु के उपयोग से वंचित हो जायेगा। जैसे आपको प्रातःकाल से ज्ञान हो गया कि लाईट सुबह चार घंटे रहेगी तो विवेकी व्यक्ति वह है जो चार घंटे में बिजली के माध्यम से जो कार्य करना अनिवार्य है उन्हें पहले कर लेगा और शेष काम बाद में करेगा। यदि कोई ये सोचता है कि मैं पहले वह काम कर लूँ जो बिना बिजली के होता है तो वह बिजली चले जाने पर दुःखी होगा।

तो जिस समय आपके पास अनुकूलता है उस समय वस्तु का उपयोग कर लो, यदि समय निकलने के बाद वस्तु का वियोग हो गया, नष्ट हो गयी या कोई और ले गया तो फिर व्यक्ति पश्चाताप करता है। किसी से कुछ समय के लिये, धन उधार लेकर के आया, उतने समय में उस धन का सदुपयोग नहीं किया तो सामने वाला व्यक्ति कहेगा मुझे मेरा धन वापिस कर दो। अब वह कहे मैंने तो धन का उपयोग किया ही नहीं, मैंने तो व्यापार शुरू किया ही नहीं, अब वह पछताये कि अभी मैं करता तो महीने छः महीने में बहुत सारा धन कमा लेता, मैंने सोचा अगली साल कमा लूँगा, व्यापारी कहेगा अगर अगली साल व्यापार करना था तो मेरे पास धन लेने क्यों आया, तभी धन ले लेता। तूने मुझसे धन लिया, व्यापार किया या नहीं इससे मुझे क्या, मुझे मेरा ब्याज दे दो।

महानुभाव! यहाँ पर आचार्य महोदय कह रहे हैं कि बिजली की चमक की तरह से नश्वर क्या है? जो भी नश्वर है उसका पहले सदुपयोग कर लो। वह नश्वर क्या है। तो कहा धन, यौवन और आयु ये तीन चीज ऐसी हैं जिनका भरोसा नहीं किया जा सकता। ये कभी भी नष्ट हो सकती हैं। धन कभी भी नष्ट हो सकता है आज आपकी मुट्ठी में है कल दूसरों की मुट्ठी में जा सकता है, आज वह आपके घर की तिजोरी में रखा है कल दूसरों के घर में, आज धन आपके नाम है कल दूसरे के नाम। तो ये धन स्थिर नहीं है शाश्वत नहीं है यह कभी भी नष्ट हो सकता है। जब पाप का उदय होता है तब अपना धन भी अपने काम नहीं आता जब पुण्य का उदय होता है तो अपना धन भी अपने काम आता है और दूसरों के माध्यम से प्राप्त होकर भी काम बन जाता है। तो धन यदि आपके पास है तो सदुपयोग करने का विचार करो वह कभी स्थायी नहीं रहेगा, कभी भी जा सकता है। लक्ष्मी एक संकेत

देकर आपके पास आयी है। जब तक आपकी पुण्य प्रकृति का उदय चल रहा है तब तक आप इस धन का सदुपयोग कर लो। वह लक्ष्मी पुण्य प्रकृति के निर्जीर्ण होते ही चली जायेगी। फिर व्यक्ति पछताये कि मेरे पास इतना धन था मैं कुछ नहीं कर पाया। आप कर पाये या नहीं कर पाये ये गलती आपकी है। तो आचार्य महोदय कह रहे हैं आपको जीवन में पश्चाताप न करना पड़े इसलिये धन आपके पास है तो उस धन का सदुपयोग कर लो।

दूसरी चीज है 'यौवन'। यौवन भी बिजली की चमक की तरह से शाश्वत नहीं है। जरूरी नहीं कि व्यक्ति 60 वर्ष के बाद ही बूढ़ा हो व्यक्ति रोग से 50 साल में भी बूढ़ा हो सकता है। 40 में भी हो सकता है और बूढ़ा न भी हो यौवन का कभी भी अंत हो सकता है। एक अच्छा भला आदमी जिसे कोई भी रोग नहीं उसकी पूरी testing करने के उपरांत उसे सर्टीफिकेट दे दिया कि आप पूर्ण स्वस्थ हैं। वह जा रहा था, अचानक उसका पैर फिसल गया, नीचे गिरा on the spot मृत्यु को प्राप्त हो गया, शरीर में तो कोई रोग नहीं था फिर भी मृत्यु को प्राप्त हो गया। जब मृत्यु आती है तो कैसे भी आ जाये कह नहीं सकते। तो यौवन का कोई भरोसा नहीं। कोई सोचे मेरी यौवन अवस्था है मुझे तो कुछ हो ही नहीं सकता तो ऐसा मत सोचो क्योंकि तुम अजर–अमर होने का प्रमाण पत्र लेकर नहीं आये हो। संसार में जो भी है सबका यौवन नष्ट होना ही है मृत्यु से चाहे वृद्धावस्था से। बालक की बाल्यावस्था नष्ट होती है चाहे यौवन से चाहे मृत्यु से। यौवन भी क्षणभंगुर है।

तीसरी बात है 'आयु'। आयु भी किसी की शाश्वत नहीं है कभी भी आयु के निषेक पूर्ण हो सकते हैं। यदि वह क्रम–क्रम से पूर्ण होते हैं तो व्यक्ति इतने समय तक जीये किंतु अचानक अकालमृत्यु भी हो सकती है। वर्तमान काल में जन्मे किसी भी

कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यंच की कभी भी मृत्यु हो सकती है। अकालमृत्यु तीर्थंकर जैसे महापुरुषों की नहीं होती भोगभूमि के जीवों की नहीं होती, नारकी–देवों की नहीं होती। कर्मभूमि के मनुष्य तिर्यंच की अकालमृत्यु कभी भी हो सकती है इसलिये आयुकर्म का ज्यादा भरोसा न करें।

एक सत्य घटना है इन्दौर की, दो युवा लड़के मोटर साईकिल पर बैठकर जा रहे थे, अचानक पीछे वाले लड़के के ऊपर एक सर्प गिरा, एक चील ने उस सर्प को नाले के पास से अपने मुख से दबाया था, और अचानक उसके मुख से सर्प छूटकर बाइक वाले व्यक्ति के ऊपर गिरा सर्प ने उसे डसा, चील नीचे आयी पुनः उसे पकड़ा और उड़कर चली गयी। उसने सर्प को मार दिया। सर्प मृत्यु को प्राप्त हुआ किन्तु मरते–मरते भी वह सर्प उस युवा व्यक्ति की मृत्यु का कारण बना। युवा की मृत्यु उसी सर्प के माध्यम से होनी थी, उसी समय बाइक से उसका निकलना, उसी समय चील द्वारा सर्प का उठाया जाना पुनः सर्प का गिरना, पुनः चील द्वारा सर्प को ले जाना और सर्प का मरना आदि क्या संयोग है। तो मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है कि कब आ जाये।

आयुः क्षणः लवमात्रं न लभ्यते हेमकोटिभिः क्वापि।
तद् गच्छति सर्वमृषतः काऽधिका हानिः।।

आयु का निमेष, पल, क्षण और समय मात्र भी व्यतीत होने पर नहीं बच सकता। चाहे कहीं भी चले जाओ, कैसे भी यत्न करो या करोड़ों–करोड़ों स्वर्ण मुद्रायें–सुवर्णों की राशियाँ दो, तब भी वह सुरक्षित नहीं रह सकती

यहाँ कहा धन यौवन और आयु विद्युत की तरह से चपल हैं। आगे कह रहे हैं–'दानं–परमं किं–सुपात्रदत्तं'–परम दान क्या है? सुपात्रों के लिये दिया गया दान श्रेष्ठ दान होता है। सुपात्रों

को दान देने से जिस पुण्य फल को प्राप्त जीव करता है वह अकथ्य है आचार्य श्री कुंदकुंद स्वामी, आचार्य श्री वसुनंदी स्वामी, आचार्य श्री अमितगति स्वामी, आचार्य श्री वामदेव सूरी, आचार्य श्री सकलकीर्ति स्वामी, आचार्य श्री वासुपूज्य महर्षि इत्यादि आचार्यों ने आहार दान की महिमा कही।

गजतुरगसहस्रं गोकुलं भूमिदानं, कनकरजतपात्रं मेदनी सागरांता।
उभयकुल पवित्रं कोटिकन्याप्रदानं, न भवति समतुल्यं अन्नदानं समानम्।।

यदि एक हजार हाथी दान कर दिए जाएँ, हजारों घोड़े, लाखों गाय सागरंत पृथ्वी, या सोने–चाँदी के बर्तन भी दान कर दिए जाएँ अपार राज्य भी दे दिया जाए, करोड़ों कन्या दान दे दी जाएँ किंतु एक मुट्ठीभर अन्नदान सुपात्र को देने के समक्ष यह सब कुछ भी नहीं।

इस एक आहार दान में ही अन्य तीन दान भी समाहित हैं। आहार ही जीव की सर्व प्रथम औषधि है। आहार के बिना तो अन्य औषधियों से कोई प्रयोजन नहीं। आहार ग्रहण कर साधु गण स्वाध्याय आदि करते हैं। बिना आहार 2–4–6 दिन तो संभव है स्वाध्याय में प्रवृत्त हो भी जाएँ किंतु बाद में शरीर में शिथिलता के कारण उसमें उपयोग नहीं लगने से स्वाध्याय में प्रवृत्ति नहीं हो पाती। एवं आहार शरीर की स्थिति का नोकर्म है, आहार ग्रहण के बिना शरीर में प्राणों का ठहरना संभव नहीं अतः यह अभय प्रदाता है। इस प्रकार इस आहार दान में ही अन्य तीन दान भी समाहित हैं।

जिस–जिस ने भी सुपात्रों को आहार दान दिया है अथवा अनुमोदना भी की है तो उसने निकट भविष्य में मोक्ष प्राप्त किया है। अत्यंत पापिष्ठ अकृतपुण्य भी सुव्रत मुनिराज के आहार दान की अनुमोदना मात्र से अतिशय पुण्यवान् धन्यकुमार हुआ व पुनः सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ। राजा श्रीषेण मुनिराज को आहार

देने के प्रभाव से आगे चलकर सोलहवे तीर्थंकर श्री शांतिनाथ हुये। राजा वज्रजंघ व रानी श्रीमति ने भक्तिपूर्वक सुपात्र मुनि महाराज को दान दिया तो आगे चलकर राजा वज्रजंघ प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ व रानी श्रीमति राजा श्रेयांस हुई। रतिवर व रतिवेगा नामक कबूतर व कबूतरी आहार दान की 'अनुमोदना' से आगे जयकुमार व सुलोचना हुए। अग्निला ब्राह्मणी श्री वरदत्त मुनिराज को आहार दान के प्रभाव से श्री नेमिनाथ भगवान् की यक्षिणी देवी अंबिका हुई। सिंह मुनिराज के आहार दान की अनुमोदना कर आगे भरत चक्रवर्ती हुआ। प्रथमानुयोग का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं कि आहार दान के प्रभाव से प्राणियों ने अतिशय वैभव, अपार संपत्ति व पुनः मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त किया यह सब सुपात्र दान का ही फल है। कुपात्र दान का सर्वथा निषेध ही है। उसके विषय में महर्षि वासुपूज्य ने दानशासन में कहा है–

कुपात्र–दानेन भवेत् दरिद्री दारिद्रयदोषेन करोति पापम्।
पापादिकारी नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्री नरकं प्रयाति।।

जिसने कुपात्र को दान दिया है वह दरिद्र होकर जन्मेगा और उस दरिद्रता को दूर करने के लिए वह नानातरह के पाप करेगा और पाप करके नरक में जायेगा। इसलिए कुपात्र को दान नहीं देना चाहिए। पुनः कहा भले ही व्यक्ति के प्राण कंठ में आ गए हो अंतिम श्वाँसें चल रही हों किंतु वह किंचित् भी पापों में आसक्त न हो असुभिरकार्यं पापो का त्याग करें। वह अरिहंत सिद्ध का नाम लेता रहे उनके गुण का चिंतन उनकी भक्ति में लीन रहे। आप लोग भजन में पढ़ते भी हैं–''नवल कहे इक क्षण भी न चूको जब तक है तन में श्वाँसा''। ना जाने कब कौन सी श्वाँस रुक जाए, अंदर जाने के बाद बाहर आए या ना भी आए अथवा पुनः अदंर जाए या न जाए, हर श्वाँस का सदुपयोग करो। जो अपनी

हर श्वाँस का सदुपयोग करता है तो उसे अग्रिम भव में हजार वर्षों में मात्र एक श्वाँस ही लेनी पड़ती है अर्थात् वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है और श्वाँस का सदुपयोग तभी है जब व्यक्ति प्रति समय इष्ट आराध्य वीतरागी देव, सिद्धों के चिंतन में रत् हो उसके मुख से 'अरिहंत–सिद्ध' निकल रहा हो, मन में उन्हीं की स्थापना हो। अतः आचार्य महाराज यहाँ कह रहें हैं कि परिस्थिति कैसे भी हो, कितनी भी क्रिटिकल हो आयु कर्म क्षीण लग रहा हो तब भी सिद्धों की वंदना, स्तुति, कीर्तन आदि करते रहना चाहिए। और शिवार्य ने साधुओं के लिए भगवती आराधना में लिखा है–

''कंठगदे वि पाणे हि, साहुणा आगमो हि कादव्वो।''

प्राण कंठ में आ बसे हों–ऐसा भीषण सकंट उपस्थित हो जाए तो भी साधुओं को आगम ग्रंथों का स्वाध्याय ही करना चाहिए।

समाधि का अंतिम क्षण चल रहा है, प्राण निकलने वाले हैं तब भी सिद्धों का सुमिरन करो, प्राण कंठ में आ जायें तब भी पाप मत करो। यहाँ आचार्य महोदय कह रहे हैं कि प्राण कंठ में आ जायें तब भी न करने योग्य पाप होता है और करने योग्य सदैव पुण्य कार्य, धर्म का कार्य होता है।

आप सभी लोग सदैव पुण्य कार्य में संलग्न हों ऐसी हम आप सभी के प्रति मंगलभावना भाते हैं और इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

किसे कैसे जीतें

महानुभाव! जीवन नदी में उठने वाली लहरों की तरह से अति चंचल है, जीवन जाल में फँसी हुयी मछली की तरह से है उलझनों से घिरा हुआ है। जीवन आकाश में चमकने वाली बिजली की तरह से क्षणध्वंसी है। जीवन एक अवसर है जिसके माध्यम से हम लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। एक व्यापारी की तरह से जीवन रूपी पूंजी का सदुपयोग करने से यथार्थ और यथेच्छ लाभ की प्राप्ति संभव है। संसारी प्राणी जानने को तो बहुत कुछ जानता है और दूसरों के लिये उपदेश भी दे देता है किंतु स्वयं ग्रहण नहीं कर पाता। जब कर्म का तीव्र उदय होता है तब व्यक्ति अपने सामने रखी हुई सफलता को भी भोग नहीं पाता, जब कर्म का तीव्र उदय होता है तब उसकी बुद्धि उल्टी ही चलने लगती है। वह किस प्रकार अपने जीवन में क्रोध, मान, माया, लोभ आदि से बच सकता है? वह किस प्रकार अपने जीवन को व्यवस्थित बना सकता है?।

संसारी प्राणी मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम आदि से कैसे बचे, पंचेन्द्रिय के विषयों में मन बार–बार चला जाता है, मन को कैसे रोका जाये? क्या ऐसा कोई उपाय है जिसके माध्यम से मन को पापों से बचा लिया जाये, मन पर पापों की छाया न पड़े, मन पर विषय कषायों की कुदृष्टि न पडे, मन कषाय की प्रज्ज्वलित इस महान् अग्नि से सुरक्षित हो जाये उसकी आहूति का ग्रास न बने, क्या किया जाये कैसे अपने मन को समझायें, कैसे अपने आप को बचायें? कई बार ऐसा होता है अपनों से जंग छिड़ जाती है, तो क्या करें? जिनकी रक्षा करने का हम संकल्प लेते हैं, कई बार आवेश में आकर उनका अहित भी कर देते हैं। कोई दूसरा व्यक्ति यदि परिवारीजनों पर कुपित होता है तो हम उसकी रक्षा

करने के लिये उससे भिड़ जाते हैं किन्तु कई बार हम स्वयं परिवारीजनों को आत्मीयजनों को कष्ट पहुँचाते हैं, पीड़ा पहुँचाते हैं इतना ही नहीं आवेश में आकर कई बार बहुत बड़ा अहित और अनर्थ भी कर देते हैं। इन सबसे कैसे बचें? कुछ बातें सूत्र रूप में देखते हैं–

पराये को जीतने के लिये वीरता की आवश्यकता होती है। जो वीर है, साहसी है, निर्भीक है, शक्ति से सम्पन्न है वह शत्रु को जीत सकता है किन्तु अपने व्यक्तियों को कैसे जीता जाये? सामने वाला बहुत वीर है, निर्भीक है, साहसी है किन्तु है वह अपना अब उसे नष्ट तो कर नहीं सकते, उसे जीतने का क्या उपाय है? उसे जीतने का उपाय है 'धीरता'। अपनों को जीतने के लिये धीरता चाहिये। वीरता, धीरता के सामने नतमस्तक हो जाती है। जो धैर्यशाली है वह वीर पुरुषों को भी झुकाने में समर्थ होते हैं।

अपना व्यक्ति कितना भी अहित करे, धैर्य धारण करके आप उसे देखते रहो, सहन करते रहो, उसका जवाब नहीं देना, क्योंकि यदि कभी आपने आवेश में आकर जवाब दे भी दिया तो जिंदगी भर पश्चाताप रहेगा। आवेश में आकर कोई अपशब्द कह दिया वे शब्द कभी लौटकर नहीं आयेंगे जिंदगी भर अफसोस रहेगा मैंने अपशब्द कहे, गाली दी या हाथ उठा दिया अथवा अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग कर दिया, मैं आपे के बाहर हो गया तो उससे पश्चाताप हो सकता है। इसलिये जब भी लड़ाई अपनों से हो तो अपनी शक्ति का प्रयोग मत करो, अपनों से लड़ाई हो तो अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग मत करो, दुर्वचनों का प्रयोग मत करो, बुद्धि प्रयोग मत करो जहाँ तक हो शांति से बैठ जाओ, मौन लेकर बैठ जाओ, हाथ जोड़कर बैठ जाओ, कुछ भी उत्तर नहीं देना है बस मुस्कुराना है। सामने वाला व्यक्ति तुमसे दो–चार

अपशब्द कहेगा, इसके बाद वह चुप हो ही जायेगा। तुम्हारा स्वयं का ही आत्मीयजन है वह तुम्हारे साथ एक बार मार पीट भी कर सकता है किन्तु बाद में उसे पश्चाताप होगा, हो सकता है वह आकर के आपके पैर पकड़े–क्षमायाचना करे।

तो अपनों से कभी आवेश में आकर के बार मत करो। जोश में बात तो पराये से की जाती है अपनों से तो पूर्ण होश में बात की जाती है। जोश में पराये से कुछ शब्द कह दिये, मर्यादा से बाहर, शक्ति से बाहर कह दिये तब भी कह सकते हैं कोई बात नहीं उस समय मैं क्रोध में था, आवेश में था ऐसे शब्द निकल गये किन्तु अपनों के साथ यदि क्रोध में कह दिया तो मुश्किल हो जाती है। पूरी जिंदगी भर भी उन्हें धो न सकेंगे, उनका प्रक्षालन न कर सकेंगे। वह गलती ज्यों की त्यों जीवंत रहेगी आपकी आँखों के सामने दिखती रहेगी और आप पश्चाताप की अग्नि में जलेंगे। इसलिये अपनों को जीतने का सबसे बड़ा उपाय है 'धीरता'।

धैर्यशील बनो और मुस्कुराते रहो। क्योंकि अपने तुमसे जीत भी गये तब भी जीत तुम्हारी है और अपने धैर्य के सामने तुमसे जीत नहीं सकते, तुम ही जीतोगे वे झुकेंगे। जिस व्यक्ति का साथ अपने देते हैं उस व्यक्ति का साथ पराये भी देते हैं। और जो अपनों से छूट जाता है तो अपने तो छूट ही गये पराये कभी उसके अपने होंगे नहीं तो अपनों से भी गया, परायों से भी गया। पराये प्रारंभ में आपको लुभायेंगे, आकर्षित करेंगे, आपको आश्वासित करेंगे, प्रलोभन देंगे, हो सकता है वे पराये आप से दुश्मनी निकालने के लिये आपको अपनों से अलग कर दें बाद में जाकर वे स्वयं आपको उस संकट में डाल दें, जिसकी कभी आपने कल्पना भी ना की हो। इसलिये अपनों को जीतने के लिये धैर्य धारण करो। मौन ले लो, कभी अपनों के साथ युद्ध मत करो, बहस मत करो कोई वाक्यों के बाण मत छोड़ो।

तलवार का प्रयोग दूसरों पर किया जाता है अपनों पर तलवार का प्रयोग मत करो। जिह्वा भी तलवार बन जाती है जब अशुभ भाव से युक्त होती है, जिह्वा को भी तलवार बनाकर अपनों पर प्रयोग मत करो। जिह्वा में अमृत मिश्रित करके अपनों पर अमृत की वर्षा करो, अपनों के ऊपर दया करुणा की वर्षा करो, अपनों के साथ सहयोग करो। और इस प्रकार से उत्तम व्यवहार करो कि अपनों को अपनी गलती का स्वयं अहसास हो जाये वे स्वयं जान जायें कि हम वास्तव में कितनी बड़ी गलती कर रहे हैं। और जब उनको स्वयं अहसास हो जायेगा तो वे स्वयं गलती छोड़ सकते हैं। शक्ति से कोई व्यक्ति अपराधों से मुक्त नहीं होता। शक्ति के माध्यम से व्यक्ति को चाहे ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाये कि वह कार्यों से बहुत बड़ा पाप न कर पाये किंतु मन फिर भी पाप करता रहेगा।

अपनों के चित्त में बढ़ी शत्रुता को धोने के लिये तुम्हारा प्रेम वात्सल्य और धैर्य बहुत आवश्यक है। क्रोध यदि दूसरों पर आ रहा है तब भी अनर्थ तो मेरा ही कर रहा है। दूसरों का अनर्थ कर पाये या न कर पाये सबसे पहले तो अनर्थ स्वयं का करता है क्योंकि यदि माचिस की तिल्ली किसी दीपक या मोमबत्ती को जलाती है तो उसके पहले स्वयं जलती है। ऐसे ही स्वयं के चित्त से उत्पन्न हुआ क्रोध दूसरों का अनर्थ करे या न करे जिसके चित्त में पैदा होता है उसका अनर्थ तो करता ही करता है।

तो क्रोध को जीतने का क्या उपाय हो सकता है? क्रोध को जीतने का उपाय आचार्यों ने कहा है–**'क्षमा'**। क्षमा का कवच धारण कर लो तो क्रोध के बाण क्षमा के कवच को भेद नहीं सकते। जितना सुदृढ़ आपके क्षमा का कवच होता है, जितनी सुदृढ़ आपकी बख्तर है क्रोध के बाण उसको भेदने में समर्थ नहीं है और क्रोधी व्यक्ति भी नतमस्तक हो जायेगा। जैसे बिना

ईंधन के अग्नि स्वयं शांत हो जाती है वैसे ही सामने वाला आप पर क्रोध करे और आप क्षमा भाव से बैठ जाओ तो सामने वाले का पारा भी ठंडा हो जाता है, वह भी ठंडे दिमाग से सोचकर आपसे क्षमा माँगेगा। किन्तु आवेश का उत्तर आवेश में देने से कभी भी अग्नि शांत नहीं होती, अग्नि में अग्नि डाल दो अग्नि कभी शांत नहीं होती। जल समीप में हो तो अग्नि शांत हो जाती है।

आगे कहा यदि जीवन में अहंकार आ रहा हो तो? क्योंकि व्यक्ति को जीवन में कोई भी सामान्य उपलब्धि होने पर अहंकार आता है। हमने कुछ उपलब्ध किया है यह हमारी समझ में आ जाये तो अहंकार आ जाता है और हमारी उपलब्धि दूसरों को समझ में आये तो फिर अहंकार नहीं आता बल्कि उसके हृदय में तुम्हारे प्रति सम्मान आता है। हमारी उपलब्धि हम खुद देखें तो मान आता है और हमारी उपलब्धि दूसरा देखे, दूसरा कहे तो सम्मान। तो अहंकार को कैसे जीतें? जब भी कोई उपलब्धि हो जाये तो अहंकार से मत भरो **विनम्रता** से झुक जाओ और झुक जाओ। यदि तुम्हारे पास धन बढ रहा है तो झुक जाओ, योग्यता बढ़ गयी तो और झुक जाओ। शब्दों में विनम्रता हो, व्यवहार में विनम्रता हो, क्रिया चर्या में विनम्रता हो। भावों में विनम्रता हो जितने नम्र होते जाओगे तो नम्रता के सामने अहंकार टिकता ही नहीं, अहंकार तब टिकता है जब सामने नम्रता नहीं हो। जैसे जल के सामने अग्नि अपना अस्तित्व खो देती है बुझ जाती है वैसे ही विनम्रता के सामने अहंकार भी घुटने टेक देता है।

विनम्रता एक प्रकाश है, अहंकार एक अंधकार है। प्रकाश आपके पास होगा तो अंधकार आपके समीप नहीं आ सकता विनम्रता आपके जीवन में होगी तो अहंकार आपके जीवन में प्रवेश न पा सकेगा। कभी भी अंधकार में वह शक्ति नहीं आयी जो किसी प्रकाश को नष्ट करके आ जाये। दुनिया भर का अंधकार

भी इकट्ठा हो जाये तब भी वह जलती हुयी मोमबत्ती या दीपक को बुझा नहीं सकता। किन्तु वह मोमबत्ती या दीपक कितना भी छोटा क्यों न हो जुगनु का ही प्रकाश क्यों न हो, किंतु जहाँ प्रकाश है उतने स्थान के अंधकार को तो दूर कर ही देगा। अतः अहं भाव नम्रता से तिरोहित होता है।

अगली बात कह रहे हैं–जीवन में यदि अज्ञान वृद्धि को प्राप्त हो रहा है तो कैसे जीतें अज्ञान को? उसका उपाय है **'तत्त्व बोध'**। स्वभाव का चिंतन करो। समीचीन शास्त्रों का स्वाध्याय करो, स्वाध्याय किया पुनः चिंतन करो, पुनः वाचन करो व चिंतन करो। सद्गुरुओं के उपदेश सुनो उसका चिंतवन करो, सत्संगति करो और सम्यग्ज्ञान की चर्चा करो। सम्यग्ज्ञान की चर्चा करने से भी सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होती है। पुष्पों का व्यापार करने से खुशबू ही आती है, पुष्प लेने से खुशबू आती है, पुष्प देने से खुशबू आती है पुष्प पास में रखने से खुशबू आती है। पुष्प खुशबू ही दे सकते हैं। तो सम्यग्ज्ञान चाहे लेना हो, देना हो, अध्ययन करना हो, चिंतन करना हो वह आपके जीवन में अज्ञान को नष्ट करने वाला ही होता है।

ज्ञान को स्व–पर प्रकाशी दीपक माना है। ज्ञान की ज्योति जहाँ प्रज्ज्वलित हो जाती है वहाँ के अंधकार को नष्ट कर देती है। तत्त्वबोध से युक्त व्यक्ति कहता है–

''हम तो सरे राह लिये बैठे हैं जलता हुआ चिराग।
जिसका जी चाहे अपना दीप जला ले''।

वह ज्ञानी पुरुष स्वयं में आनंद का अनुभव कर रहा है वह जलती हुयी मशाल लेकर के बैठा है। चाहो तो अपना चिराग तुम भी जला सकते हो न चाहो तो बुझे दीपक को लेकर के जैसे अनादि से बैठे हो आगे भी बैठे रहो। जब भी बुझा दीपक जलेगा

जलते हुये दीपक के माध्यम से जलेगा। अज्ञान तिरोहित होगा तो ज्ञान के माध्यम से, अंधकार जब भी नष्ट होगा प्रकाश के माध्यम से। अंधकार को लाठियों से दूर नहीं कर सकते, अंधकार को तोप–तमंचा और तलवार से नष्ट नहीं किया जा सकता उसे नष्ट करने का उपाय है ज्ञान का प्रकाश। ऐसे ही अपने स्वयं के अज्ञान को नष्ट करने के लिये सम्यग्ज्ञान की वर्तिका–दीपज्योति परम आवश्यक है। जो सम्यग्ज्ञान की जीवन में वृद्धि करते जाते हैं उनका अज्ञान स्वयं ही तिरोहित होता चला जाता है।

अगली बात कही जीवन में यदि परिणामों में कुटिलता आ रही हो तो क्या करें? छलकपट की भावना पैदा हो रही हो तो क्या करें? अपने **परिणामों को सरल बनाओ,** सहज बनाओ। जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिये परिणाम कुटिल हो रहे हैं, तब सोचो ये वस्तु शाश्वत नहीं रहेगी नष्ट हो जायेगी, मैं अपने परिणाम क्यों खराब करूँ? परिणाम कुटिल करने से पाप का ही आस्रव और बंध होगा, उस पाप का फल मुझे ही भोगना पड़ेगा, इसलिये परिणामों में सरलता लाना ठीक रहता है।

एक स्थान पर कई मजदूर काम कर रहे थे, खेत था, वहाँ नींव खोदकर भवन बनाना था। मजदूर काम कर रहे थे, काम करते–करते मजदूरों को एक कलश मिला, उसमें सोने के सिक्के थे। मजदूरों ने कहा हमें तो अपनी मजदूरी करनी है हम ठेकेदार से मिलते हैं उसे देते हैं ठेकेदार से कहा–भाई हमें तो मजदूरी मिलती है हमें यह कलश मिला है इसे आप ले लो। ठेकेदार ने कहा मैंने जो ठेका लिया है मकान बनाने का उससे मुझे पैसा मिलेगा, यह कलश मेरा है ही नहीं जिसकी भूमि है उसका यह पैसा है, उसको जाकर के देता हूँ। वह ठेकेदार भूमि के मालिक के पास गया, भूमि का मालिक कहता है मैंने तो राजा से भूमि खरीदी थी, कलश थोड़े ही खरीदा है ये तो राजा का होना

चाहिये वे राजा के पास लेकर के गये, मजदूर भी पहुँचे, ठेकेदार भी पहुँचा, भूमि का मालिक वह सेठ भी पहुँचा और राजा तो वहाँ था ही। राजा कहता है–भाई! मैंने तुम्हें भूमि बेची और यह धन भूमि के साथ गया मेरा होता तो मैं निकाल लेता, अब तेरी भूमि में से निकला है तो तेरा है। यह मेरे भाग्य का होता तो पहले निकल जाता। सुबह से शाम तक बहस चलती रही चारों कहते रहे ये कलश तेरा है–तेरा है। कोई भी लेने को तैयार नहीं।

बात दूसरे दिन के लिये टाल दी, प्रातःकाल इसका निर्णय करेंगे। चारों प्रातःकाल फिर से सभा में पहुँचे। मजदूरों के मन में पाप आया कलश तो हमने निकाला था, हमारा कलश है हम कह देंगे दरबार में जाकर के कि कलश हमारा है, आप तीनों में से किसी का नहीं क्योंकि आपने थोड़े ही निकाला है, हमें मिला है, हमारे भाग्य से मिला है। इधर ठेकेदार के मन में पाप आया वह सोचता है मैं कल जाकर के कहूँगा, काम तो मैं करा रहा था, मजदूरों को उनकी मजदूरी मैं देता हूँ तो कलश मेरा है। भूमि का मालिक रात में, सोचने लगा अरे! भूमि तो मेरी है। कलश मेरा है न राजा का अधिकार है न ठेकेदार का, न मजदूरों का अधिकार। राजा सोच रहा था–अरे! भूमि तो मैंने बेची थी मेरा कलश है यह मेरे खजाने में आना चाहिये, उसने तो सिर्फ भूमि खरीदी कलश थोड़े ही खरीदा है। चारों के मन में पाप आ गया। प्रातःकाल पहुँचे सभी कहने लगे इस कलश पर मेरा–अधिकार है–मेरा अधिकार है। पहले दिन क्या कह रहे थे–हमारा अधिकार नहीं आपका अधिकार है अब कह रहे हैं मेरा अधिकर है।

यहाँ पर कुछ और लोग भी थे, उन्होंने कहा–भैया ऐसा करो देख लो इस कलश में कितने सोने के सिक्के हैं और चारों बराबर–बराबर बांट लो। कलश को पुनः खोलकर उल्टा करके देखा तो कलश में सोने का सिक्का तो एक भी नहीं पूरे

कोयले भरे हुये हैं। महानुभाव! लोग देखकर के दंग रह गये कि भावनाओं का क्या प्रभाव रहता है। कुटिलता से निःसंदेह हमारा बना हुआ कार्य भी बिगड़ जाता है इसलिये मन में कोई कुटिल भाव मत रखो जीवन में सदा ईमानदारी के साथ चलो, सदा सुख शांति प्राप्त करोगे।

आगे कहा गर लोभ की भावना मन में जगे तो **संतोष** को धारण करना चाहिये, संतोष धारण करने से लोभ की भावना को दबाया जा सकता, लोभ को जीता जा सकता है। लोभ रूपी शत्रु संतोष के सामने तुरंत ही नतमस्तक हो जाता है। जब जीवन में कामवासना सता रही हो तब शीलव्रत का पालन करो, इससे वासना पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

महानुभाव! इस तरह धीरता से वीरता को जीतो, क्षमा से क्रोध को जीतो, नम्रता से अहंकार को जीतो, तत्त्वबोध से अज्ञान को जीतो, सरलता से कुटिलता को, संतोष से लोभ को और शील से काम को जीतना चाहिये। ऐसे जो जीतने में समर्थ होते हैं वही महापुरुष होते हैं। आप सभी इसी प्रकार से अपने शत्रुओं को जीतें और आत्मा के वैभव को प्राप्त कर सकें, तीनों लोक के नाथ बनें ऐसी हम आपके प्रति मंगल भावना भाते हैं और इन्हीं मंगलभावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

कब क्या करें?

महानुभाव! जीवन में कौन सा कार्य कब करना चाहिये इस बात का जिसे ज्ञान होता है वह उस कार्य के माध्यम से समुचित लाभ लेने में समर्थ होता है। जो स्थान और समय की परख नहीं कर पाता वह कार्य करते हुये भी उस कार्य के समुचित फल को प्राप्त नहीं कर पाता। जैसे किसी व्यक्ति के पास गर्म कपड़े हैं तो गर्म कपड़े वह सर्दी में पहनेगा तो सर्दी से बचाव हो जायेगा, गर्म वस्तुयें सर्दी में खायेगा स्वास्थ्य ठीक रहेगा, शीतल पेय पदार्थादि गर्मी में सेवन करे तब ठीक है और जो वस्त्र गर्मी में भी शीतलता प्रदान करें तो वे वस्त्र उसके लिये उचित हैं। वर्षाकाल में छाता लगाकर चले तो ठीक है और जब बारिश नहीं हो रही हो, मौसम अनुकूल हो तब छाता लगाकर चलेगा तो उससे लाभ न हो सकेगा।

इसी तरह से किस कार्य को कब करना उचित रहता है इस पर निर्भर करती है उसकी सफलता। किसान अपने खेतों में बीज बोता है, बीज बोने के पहले खेत की जुताई करता है, फिर उसके बाद खेत में बीज बोता है। अंकुर पैदा होता है उसके बाद में घास साथ में आती है निराई करता है, उसके बाद बीज में सिंचाई करता है फिर उसके बाद बीच में हल से बखर देता है। उसके बाद पुनः जल सिंचन करता है फिर उसमें फलादि आते हैं फिर वह उस फसल को काट के रख लेता है यदि इस क्रम का उल्लंघन कर दे तो? तब वह फसल को प्राप्त न कर पायेगा। पहले बीज बो दे, फिर जुताई करे, अंकुर पैदा हो जायें तो पहले उन्हें काट ले फिर सिंचाई करे, निराई का काम जब फसल पक गई हो तब करे तो वह नष्ट हो जायेगी। तो जो काम जिस समय करना चाहिये उस समय करता जायेगा तब तो वह लाभ ले पायेगा और यदि क्रम बदल दिया तो लाभ न ले पायेगा।

किसी फैक्ट्री में कोई माल बन रहा है तो वहाँ पर भी क्रम है बीच में यदि क्रम change हो गया तो वस्तु का सही निर्माण न हो सकेगा। जैसे कुंभकार मिट्टी को पहले गलाता है, गूंथता है उसके उपरांत फिर कलश बनाता है, चाक घुमाता है, फिर सुखाता है, पकाता है यदि क्रम change कर दिया जाये पहले पकाये सुखाये फिर मिट्टी को गलाये तो क्या उसे कलश मिलेगा? नहीं। गीली मिट्टी में थप्पी लगाकर वह कलश बढ़ाता है यदि सूख जाने पर थप्पी लगाये तो? नहीं। महिलायें भी रोटी बनाती हैं वे गेहूँ आदि पहले पीसती हैं फिर गूंथती हैं उसके उपरांत पुनः चकले पर बेलकर, तवे अथवा चूल्हे आदि पर रोटी बनाती हैं, तब उसे बनाकर रखती हैं। यदि उसका क्रम उल्टा सीधा हो जाये तो? रोटी नहीं बन पायेगी। तो कौन सा कार्य कब करना चाहिये इस बात का जिसके पास विवेक है वह व्यक्ति ही वास्तव में उसका लाभ ले सकता है, जिसके पास इतना विवेक नहीं है वह लाभ नहीं ले सकता।

माँ के गर्भ में जीव आया, उस समय वह जीव सुसंस्कारों को प्राप्त करने में समर्थ होता है सुसंस्कार जितने शीघ्र गर्भ में प्राप्त किये जा सकते हैं उतने शीघ्र फिर जन्म के बाद, नहीं किये जा सकते। गर्भ में जीव आया, अभी नूतन स्थान है माँ जिस प्रकार के शब्द बोलती है वह ग्रहण करता है, माँ जैसी क्रिया करती है वैसा प्रभाव पड़ता है, माँ जैसा चिन्तन करती है वैसा प्रभाव पड़ता है इसलिये गर्भस्थ शिशु पर सबसे ज्यादा प्रभाव उसकी माँ का पड़ता है पिता का कम। तो माँ अपने गर्भस्थ शिशु को जैसे संस्कार देना चाहे, दे सकती है। गीली मिट्टी को जैसा चाहे वैसा आकार दिया जा सकता है कुंभकार जो चाहे सो गढ़े बाद में थोड़ी सी मिट्टी सूखने लगी, फिर उसे गढ़ना मुश्किल होगा, अगर पूरा सूख गया तो और मुश्किल। छोटे पौधे को जैसा

चाहे वैसा ढाला जा सकता है, बड़ा होने पर फिर जैसा चाहे वैसा नहीं ढाल सकते।

महानुभाव! यदि सुसंस्कार देने का संकल्प है तो गर्भावस्था में दें। दाम्पत्य जीवन को स्वीकार करने वाले वे दोनों प्राणी गर्भ में जीव आये उससे पहले ही अच्छी भावना भाना प्रारंभ करें और निरंतर अच्छी भावना भायें। जैसी भावना भायेंगे वैसे संस्कार उस जीव में आयेंगे। एक माँ गर्भ समय में नित्य ही तत्वार्थ सूत्र का पाठ करती है, भक्तामर का पाठ करती है, सहस्रनाम का पाठ करती है, तीन बार सामायिक करती है, नित्यपूजा करती है, आहारादि दान देती है गर्भ में जीव है ऐसा नहीं कोई मूर्तिक है वह चेतना से युक्त है वह शरीर का निर्माण का रहा है उस आत्मा में जानने–देखने की शक्ति है, ग्रहण करने की शक्ति है। माँ के संस्कार वह ग्रहण करता जा रहा है और आश्चर्य होता है वह बालक जन्म होने के बाद 2–3 साल का हो पाया उसे तत्वार्थसूत्र बोलना आ गया, 4–5 साल का होते–होते सहस्रनाम का पाठ करने लगा। वह सामायिक करने के लिये पद्मासन लगाकर आँख बंद करके बैठ जाता है, उसे णमोकार मंत्र आने लगा, जो पाठ माँ करती थी वे सब उसे याद हो गये। माँ ने जन्म देने के बाद भी पाठ करना छोड़ा नहीं वह बालक जन्म लेते ही वही आवाज सुनता है। वह जन्म लेते ही सबसे पहले देखता है कि जो आवाज में अंदर सुन रहा था वह कौन सी आवाज थी? अच्छा ये आवाज तो मेरी माँ की आवाज थी, ये मेरी हितकारी है, इसने मुझे अपने गर्भ में धारण किया। इसलिये बालक सबसे पहले जानता है तो माँ को जानता है। पूरे संसार में सबसे अधिक हितकारी मानता है तो अपनी माँ को मानता है। पश्चात् माँ के कहने पर पिता पर विश्वास करता है फिर भाई–बहिन पर विश्वास करता है।

तो सुसंस्कार प्राप्त करने की पहली व श्रेष्ठ दशा है गर्भावस्था। गर्भअवस्था में संस्कार और शैशव अवस्था में 'प्यार'। जब बालक की शैशवावस्था हो तब खूब भरपूर लाड़–प्यार देना चाहिये। उसे जितना प्यार मिलेगा वह जीवन में किसी से नफरत कर ही नहीं सकेगा। जिस बालक को शैशव अवस्था में प्यार नहीं मिलता है यदि वह नफरत, घृणा सहन करते हैं वे बड़े क्रूर परिणामी बन जाते हैं। जिनका शैशव बड़ी क्रूरता के साथ व्यतीत हुआ है बड़े होकर उनमें क्रूरता ही आती है वे अपने माता–पिता के प्रति भी दया नहीं करते और शैशवावस्था में जिन्हें प्यार मिला है थोड़ी सी कोई घटना घटित हो जाती है तो उनकी आँखें गीली हो जाती हैं। वे इतने संवेदनशील हो जाते हैं कि दूसरे व्यक्ति को दुःखी देख लें तो आँखें नम हो जायें, कोई दुःखद प्रसंग सुनें तो आँखें नम हो जायें वे तुरंत भावुक हो जाते हैं।

यदि बालक बड़े हो गये तो उन पर खूब प्यार भी लुटाओ, खूब सम्पत्ति लुटाओ तब भी वे बालक बड़े होकर के तुम्हारे नहीं हो सकते। शैशव में प्यार दिया है तो तुम्हें छोड़कर कभी अलग न हो सकेंगे। शैशव के उपरांत बचपन प्रारंभ हो जाता है। जन्म के 3 वर्ष तक शैशवकाल, बचपन प्रारंभ हुआ 3 वर्ष से 12 वर्ष तक। बचपन में अच्छी शिक्षा दो। बालक को बचपन में जो कुछ भी याद करा दोगे उसे उम्र भर याद रहेगा। वह एक–एक क्रिया को देखता है कैसे मेरी माँ धोक लगाती है, कैसे मेरी माँ हाथ जोड़ती है पिता जी कैसे अभिषेक करते हैं कैसे घर में बोलते हैं वह सीखता है, वह उनकी हर क्रिया–प्रतिक्रिया से सीखता है, शब्दों से सीखता है।

तो बचपन शिक्षा देने के लिये है। यदि बचपन में शिक्षा नहीं दी, बाद में शिक्षा दी तो उसे शिक्षा ग्रहण करने में बड़ी कठिनाई होगी, शिक्षा देने वाले को भी बहुत कठिनाई होगी। या अधिकतम

5 वर्ष से 15 वर्ष ले लें इतने समय तक बालक की बुद्धि एक कोरी सिलेट है उस पर जो चाहें वह लिखा जा सकता है। शिक्षा कितनी भी क्लिष्ट हो उस समय दोगे तो वह ग्रहण कर लेगा सीख लेगा, नहीं तो बाद में उम्र–बढ़ते–बढ़ते उसका क्षयोपशम घट भी सकता है।

आगे आती है 'किशोरावस्था', 15 वर्ष से 24 वर्ष तक ले लें उस किशोरावस्था में उसका निरीक्षण रखो। केवल लाड़ प्यार नहीं, केवल शिक्षा के पीछे मत पड़ो वरन् उसका निरीक्षण करो उसकी प्रवृत्ति क्या चल रही है। वह कब क्या कर रहा है, कैसे कर रहा है, मन में क्या चल रहा है उसे देखते रहो, वह पूछे तो समझाते रहो, उपेक्षा मत रखो, डाँटो मत और ज्यादा लाड़ भी मत लड़ाओ। इस समय वह कोई गलती करता है तो प्यार से समझा दो, उस समय उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जो इस किशोर अवस्था में अपनी संतानों की उपेक्षा कर देते हैं निःसंदेह वे बेटे–बेटियाँ उनके हाथ से निकल जाते हैं। पक्षी के बच्चों की तरह से पिंजरा खोला तो फुर से उड़ ही जायेंगे। इसलिये किशोरावस्था में उन पर दृष्टि रखना बहुत जरूरी है।

पुनः यौवन अवस्था में वह अपने मार्ग का चयन करता है। यौवन अवस्था में क्या करना चाहिये? आत्महित के लिये दीक्षा स्वीकार करनी चाहिये अथवा यौवन अवस्था में माता–पिता की सेवा करना चाहिये या व्यापारादि धनोपार्जन करना चाहिये? यौवन अवस्था में वह कार्य करना चाहिये जिसे करने पर वह अपना जीवन सफल और सार्थक माने, यदि वह धन से मानता है तो धन कमाये, यदि माता–पिता की सेवा से मानता है तो वह करे, यदि परिवार की समृद्धि से मानता है तो वह करे, यदि दीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण से मानता है तो दीक्षा स्वीकार करे क्योंकि 24 से 36 वर्ष की अवस्था ऐसी है जिस अवस्था में वह

जिस कार्य का संकल्प लेता है उस कार्य को पूरा कर लेता है। बाद में उसके परिणामों में वह बात नहीं रहती, कदाचित् व्यक्ति उत्साह से भरा रहे तो अपने यौवन को 24 से 36 की बजाय 24 से 48 तक भी ले जा सकता है। और कोई व्यक्ति 36 से पहले भी बूढ़ा हो सकता है, जिसके अंदर का उत्साह मर गया हो वह जीते जी मृत तुल्य है।

यौवन अवस्था के बाद आती है, प्रौढ़ावस्था' प्रौढ़ अवस्था मानकर चलें 48 से लेकर 60 तक और किन्हीं के लिये जिनकी उम्र ही 60 वर्ष है वह काम करते–करते थक गया, 36 साल में कहने लगा कि भैया! अब मेरे बस की नहीं है तो उसकी प्रौढ़ावस्था 36 से भी प्रारंभ हो सकती है। तो वह प्रौढ़ावस्था में क्या करे, उस समय तत्त्वचिंतन करे। वह गंभीर बने, प्रत्येक बात का उत्तर शीघ्र न दे।

प्रौढ़ावस्था में दूसरे की बात को सुनने की चेष्टा करे, स्वभाव का चिंतन करे तत्त्वबोध को प्राप्त करे, वह करे कम जाने ज्यादा सुनना भले ही कम हो किंतु गुनना ज्यादा हो। उस समय कुछ गंभीरता होना चाहिये, धैर्यता आना चाहिये, तत्त्वबोध आना चाहिये, सहजता–सरलता आना चाहिये और साथ ही सजगता भी आना चाहिये और दूसरों को सहयोग व संबल देने की भावना प्रौढ़ावस्था में उसके लिये अनिवार्य है। क्योंकि अब उसकी बुद्धि बहुत परिपक्व हो चुकी है। शरीर की स्थिति ठीक है तो यह अवस्था 60 वर्ष या उससे भी अधिक वर्ष तक चल सकती है।

अब आती है 'वृद्धावस्था'। किसी की वृद्धावस्था 60 से प्रारंभ होती है किसी की 60–70 के बाद या 60 से पूर्व। जब शरीर शिथिल होने लगे, इंद्रियाँ काम करना बंद कर दे समझो वृद्ध ावस्था आ गयी। अब इंद्रियों के द्वारा नियत काम नहीं हो पा रहा तो अब क्या करें? अपने मन को प्रभु भक्ति में लगायें। वह

शास्त्र सुने, गुरु की भक्ति–सेवा करे कहीं मन विचलित हो तो भोगों का परित्याग करके योग साधना में संलग्न हो जाये, तीर्थ यात्रा करे, अधिक से अधिक अपने चित्त को धर्म में लगाये।

इस प्रकार जब वृद्धावस्था बढ़ती जाती है तो कहा जाता है, वृद्ध ही सबसे बड़ा समृद्ध है जिसके पास प्रगाढ़ बुद्धि है, जिसके पास प्रचुर मात्रा में अनुभव है, जिसने अपने जीवन के उतार–चढ़ाव देखे हैं उसके बाद जो उपलब्धि हुयी है वह उसकी नयी उपलब्धि मानी जाती है। निजी उपलब्धि के माध्यम से वह अपने जीवन को सफल और सार्थक कर सकता है। जिसके पास इस प्रकार की सामर्थ्य नहीं है तो वह वृद्ध होकर के भी दुःखी हो सकता है किन्तु वृद्धावस्था में जब इंद्रियाँ काम कम कर पा रही हैं, इंद्रिय विषय को ग्रहण नहीं कर पा रही हैं तो उनसे ज्यादा काम न लें। जैसे ग्रहस्थ भी बूढ़े बैल, बूढ़े हाथी से ज्यादा काम नहीं लेता तो अपनी इंद्रियाँ भी वृद्ध हो रही हैं उन वृद्ध इंद्रियों से ज्यादा काम न लें। आँखों से ज्यादा नहीं देखा जा रहा तो ऐसा नहीं मैं 4–6 घंटे पढूँगा ही पढूँगा, कान से कम सुनाई दे रहा है तो कम ही सुनें या जिह्वा से नहीं बोला जा रहा तो कम ही बोलें, यदि शरीर काम कम कर रहा है तो कम ही काम करें जोश से काम कोई न करें, शांति से रहें।

अब क्या है कि फसल पकी हुयी है, किसान पकी हुयी फसल की बहुत सुरक्षा करता है, परीक्षा का समय जब पास आता है तो विद्यार्थी बड़ा सावधान रहता है तो वृद्धअवस्था भी बहुत सावधान होने की है। फैक्ट्री में माल पूरा तैयार होने को है थोड़ी सी भी चूक हो गयी तो गड़बड़ हो जायेगी। डॉक्टर ने ऑपरेशन किया, अच्छे से ऑपरेशन हो गया, अब टाँके लगाकर बंद करना है, यदि अब कुछ गड़बड़ हो गयी तो सब किये कराये पर पानी फिर जायेगा। तो वृद्धावस्था बड़ी शांति की है।

अब आती है 'अंत अवस्था'। वृद्ध अवस्था का अंत होने को हो, अगले भव की तैयारी करना है, परलोक में गमन करना है तो उसके लिये वह तैयारी करे। वह क्या तैयारी करे? 'सल्लेखना'– अर्थात् समाधि सहित मरण। अंतिम समय में भी वह पूरा जीवन सार्थक कर सकता है। एक लंबी रस्सी बाल्टी में बाँधकर कुयें में डाल दी, और बाल्टी के साथ रस्सी भी बड़ी स्पीड के साथ कुयें में जा रही है किन्तु उसने शीघ्रता से रस्सी के अंतिम छोर को पकड़ लिया चार अंगुल का छोर पकड़ में आ जायो तो पूरी रस्सी व बाल्टी कुयें से निकाली जा सकती है। ऐसे ही जीवन के चार अंतिम क्षण भी रह गये हों और होश जाग जाये तब भी सल्लेखना की साधना की जा सकती है, तब भी अपने जीवन को सफल और सार्थक किया जा सकता है।

महानुभाव! जीवन को सफल और सार्थक करने का यही उपाय है गर्भावस्था में सुसंस्कार, शैशवअवस्था में प्यार, बचपन में शिक्षा, यौवन में दीक्षा या पितृ सेवा या गृह संचालन, प्रौढ़ावस्था मे तत्त्वबोध, गंभीरता, विचारपूर्वक परिवार का संचालन, मित्रों के साथ रहकर के समाज की सेवा आदि कार्य, वृद्ध अवस्था में प्रभुभक्ति–गुरुसेवा और अंत समय में सल्लेखना पूर्वक शरीर का परित्याग करना। इस प्रकार करने से जीवन सफल और सार्थक होता है। आप सभी लोग भी अपने जीवन को सफल और सार्थक करें, जितनी अवस्थायें आपकी शेष रह गयी हैं उन अवस्थाओं में वे कार्य करें। और यदि वंशवृद्धि करना चाहते हैं तो गर्भावस्था से संस्कारों का क्रम रखें तभी आने वाले जीव का जीवन भी सफल और सार्थक हो सकता है। आप सभी का जीवन भी सार्थक बने हम ऐसी भावना रखते हैं। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।

भव भ्रमण भंजक

महानुभाव! अनादिकाल से यह जीव संसार में परिभ्रमण कर रहा है। परिभ्रमण करने में इसे सुख नहीं दुःख ही प्राप्त हो रहा है, इसलिये भव्य जीव संसार परिभ्रमण से मुक्त होना चाहते हैं। कोई भी जीव ऐसा नहीं है जो संसार में परिभ्रमण करना चाहता हो, सभी चाहते हैं हम शांति से बैठें। आप लोग भी कुछ काम करने के उपरांत थक जाते हैं तो कहते हैं–'चलो अब शांति से बैठो, अब बहुत हो गया'। क्रांति करने वाले भी कहते हैं 'अब शांति से बैठो'। शांति से बैठ जाना हमारी प्रकृति है, स्वभाव है, शील है संसार में जन्म–मरण करना हमारा स्वभाव नहीं है। यहाँ पर हम आपको आठ सूत्र देते हैं 'भव भ्रमण भंजक'। संसार के भ्रमण को नष्ट करने वाले ये 8 सूत्र हैं जो 'भ कार' अक्षर से प्रारंभ होते हैं।

संसार का भ्रमण नष्ट करने वाला पहला सूत्र है–**'भगवत् भजन'** भगवत् वह कहलाते हैं जो सम्पूर्ण ज्ञान से युक्त हैं। भग शब्द का अर्थ होता है ज्ञान अथवा आत्मएश्वर्य'। भगवान् की भक्ति करने से, उनका भजन करने से व्यक्ति के पापों का क्षय होता है, भगवान् की भक्ति 'भगवत्' अवस्था को प्रदान करने वाली होती है। भगवान् की भक्ति भवभ्रमण की भंजक है। जिसने भी भगवान् की भक्ति की वह संसार सागर से पार हो गया और जिसने भगवान् की भक्ति नहीं की ऐसा एक भी जीव नहीं है जो संसार सागर से पार हुआ हो। भजन करने वाला व्यक्ति स्वयं भी भजनीय होता है। जो भाजक है वह जब अपने भाज्य को भजता है तो उसे भजन फल प्राप्त होता है। यानि भक्त भगवान् की भक्ति करता है तब वह भक्त भी भक्ति के बल से भगवान् बन जाता है।

भक्ति एक सेतु है, भक्त सेतु के इस किनारे पर खड़ा है और सेतु के उस किनारे पर पहुँचना है। उस किनारे पर 'भगवत्

अवस्था' प्राप्त होती है। भक्ति वह सेतु है जिसके माध्यम से भक्त भगवान् की अवस्था को प्राप्त हो जाता है। भक्ति एक ऐसा रसायन है जिसके माध्यम से भक्त की आत्मा परमात्मा बन जाती है। भगवत् भक्ति प्रथम कारण है। भाव भंजन करने का द्वितीय कारण है–**'भोजन'**, भोजन भजनपूर्वक हो, जो भजन करके भोजन करता है उसका भोजन भी भजन में शामिल होता है। ऐसा करने वाला व्यक्ति कभी अशुद्ध भोजन नहीं करता। भजन करने वाल व्यक्ति अभक्ष्य को स्वीकार नहीं करता वह निरामिष भोजन करता है आमिष भोजन नहीं करता, अंडा–मांस–शराब आदि का सेवन नहीं करता। भोजन करते समय भी द्रव्य–क्षेत्र काल–भाव इन चार शुद्धियों का ध्यान रखता है तब भोजन करता है। भजन के उपरांत किया गया भोजन अमृतोपमा हो जाता है। भजन करने वाला व्यक्ति इस प्रकार का भोजन नहीं करता जिस प्रकार के भोजन का भगवान् ने निषेध किया है। वह शुद्ध–सात्विक–मर्यादित–सुपाच्य व आरोग्यवर्धक भोजन करता है।

जो भोजन धर्मध्यान की वृद्धि करने वाला हो, जिस भोजन को करने से परिणाम विशुद्ध होते हों वह भोजन ग्राह्य है। भोजन की द्रव्य शुद्धि के साथ ही क्षेत्र शुद्धि का भी ध्यान रखना है वह ऐसे स्थान पर बैठकर भोजन करे जहाँ पर मलिनता न हों परिणाम मलिन न हो। वह स्थान गंदा व अशुद्ध न हो। काल शुद्धि के लिये वह रात्रि में भोजन न करे, संध्याकाल में भोजन न करे, जब प्रभुभक्ति का समय हो उस समय भोजन न करे, भोजन के समय में ही भोजन करे अन्य समय में भोजन करने से अमृतमय भोजन भी विष का काम करता है। इसलिये भोजन करने का समय भी नियत है, उस समय भोजन करने से वह स्वास्थ्यवर्धक होता है, परिणामों को निर्मल करने वाला होता है।

भोजन करते समय भावों की शुद्धि परमावश्यक है यदि क्रोध के परिणाम हैं तो भोजन न करें, यदि अहंकार के परिणाम हैं तो भोजन न करें, यदि कषाय के परिणाम हैं तब भोजन न करें, यदि तीव्र विषयासक्ति चल रही है तब भी भोजन न करें। परिणामों को पहले शांत कर लें, शांत करने पर ही वह भोजन अनुकूल हो सकता है। विपरीत परिणामों में ग्रहण किया गया भोजन तन मन व चेतन सबके लिये हानिकारक हो सकता है। जब परिणामों में विकृति आयी हो उस समय कुछ भी ग्रहण किया जाता है तो उससे पतन ही होता है आत्मा का भी और शरीर का भी इसलिये भोजन शुद्धिपूर्वक करें।

आगे तृतीय सूत्र है–**'भाषा'**। भाषा भी भवभंजन में कारण है, भाषा कैसी हो? जिस क्षेत्र में जन्म लिया है, जो आपकी मातृभूमि है वहाँ की भाषा बोलो कोई हर्ज नहीं है किन्तु भाषा हितकारी हो, सीमित हो, प्रेय हो और शांति देने वाली हो। जिस भाषा को बोलकर आपको पश्चाताप हो, दुःख हो ऐसी भाषा मत बोलो। जिस भाषा को सुनकर दूसरों को कष्ट हो ऐसी भाषा मत बोलो। जो भाषा कर्कश है, निंदित है, अपमानजनित है, दूसरों को अहितकर है ऐसी भाषा मत बोलो। भाषा प्रिय हो जिससे सुनने वाले कहें और सुनाओ और सुनाओ। भाषा में भी चार प्रकार की शुद्धि जरूरी है, जो हितकारी, प्रेय, सीमित, सारभूत और तत्त्वभूत हो, ऐसा नहीं कि छिलकों को कूटने की तरह से कुछ निकले ही नहीं। भाषा सारभूत भी होना चाहिये। ऐसा नहीं की बहुत सारा बोला और सार थोड़ा सा निकला।

पुनः चौथा सूत्र है–**''भाव भद्रता''** भावों में भद्रता आना चाहिये। भद्र व्यक्ति वह कहलाता है जो क्रोध–मान–माया–लोभ को शमित कर लेता है, जिसकी प्राणी मात्र के प्रति मित्रता हो, जिसका गुणीजनों के प्रति प्रमोद भाव हो, आनंद का भाव हो,

जो दुःखी जनों को देखकर के करुणा से आर्द्र हो जाये और जो विरोधियों को देखकर के मध्यस्थ हो जाये ऐसे जिसके भाव होते हैं वह भद्रपरिणामी होता है। भद्रता के मायने ये है कि उसके जीवन में प्रशमभाव हो, संवेगभाव हो, उसके जीवन में आस्तिक्यभाव हो, उसके जीवन में अनुकंपा का भाव हो। ये चार भाव जिसके होते हैं वह भद्र परिणामी कहलाता है। तो भावों में भद्रता हो, जिसके भावों में भद्रता होगी वह भव भ्रमण का भंजन करने में समर्थ होता है।

पाँचवां सूत्र है–**'भेषभूषा**–इसका भी स्व और पर के जीवन में प्रभाव पड़ता है। सात्विक भेष–भूषा धारण करने से परिणाम अच्छे होते हैं यदि भेष–भूषा विकृत है तो अपने और दूसरों के परिणाम विकृत होते हैं। प्रसंग रामायण का है–रावण ने जब सीता का अपहरण किया, वह सीता को अपनी पत्नी बनाना चाहता था उसने उससे अनेक प्रकार से कहा, लोभ–लालच–भय सब दिखाकर के कहा किंतु सीता अपने सती धर्म में दृढ़ रही और सीता ने रावण को आँख उठाकर के देखा भी नहीं। उसने यही कहा तुम मेरे लिये पिता के तुल्य हो तुम्हारी कुदृष्टि तुम्हारे लिये अहितकारी है। किंतु रावण अपनी आसक्ति को, उसके प्रति तीव्र राग को नियंत्रण करने में असमर्थ हो रहा था। लोगों ने कहा–आप सीता को अपनी पत्नी बनाना चाहते हो पर वह तुम्हारी पत्नी नहीं बनना चाहती है। क्यों? क्योंकि वह राम में अति आस्थावान् है, राम का नाम लेते–लेते जी रही है। यदि कोई कह दे कि राम की मृत्यु को गयी वह भी अभी मृत्यु को प्राप्त हो जाये इतना राम के प्रति उसका भाव है।

सलाह देने वालों ने रावण से कहा कि तुम राम का रूप क्यों नहीं बना लेते। राम का रूप बनाकर सीता के पास पहुँच जाओ और जब सीता तुम्हारे पास आ जाये तब तुम अपने असली

रूप में आ जाना। रावण ने कहा कि मैं वह काम भी कर चुका, तो क्या सीता राम को भी नहीं चाहती है? नहीं ऐसी बात नहीं है वह राम को चाहती है। फिर क्या बात है? बात ये है कि मैं जब–जब राम का रूप बनाता हूँ तब–तब मेरे अंदर से विषयवासना चली जाती है भावना ही नहीं आती है कि मैं पर स्त्री पर कुदृष्टि डालूँ।

महानुभाव भेष–भूषा का प्रभाव पड़ता है। यदि कुछ लड़कियाँ सात्विक भेष भूषा से college या market जाती हैं तो उनके प्रति लोगों की दृष्टि अच्छी होती है, कोई बालायें यदि अशिष्ट भेष–भूषा के साथ निकलती हैं तो गंदे लड़कों की दृष्टि उन पर जाती है। जब वस्त्र अल्प हों, जालीदार हों तो संभव है उन लड़कियों के मन में भी विकारी भाव है। इसलिये वे इस प्रकार के वस्त्रों को पहनती हैं। वे जानती भी हैं कि इस प्रकार के वस्त्र पहनकर लोग हमें तंग कर सकते हैं, कुदृष्टि जा सकती है फिर भी ऐसा कर रहे हैं तो भाव खराब हैं।

आर्य संस्कृति में, भारतीय परम्परा में कहा है कि भेष–भूषा भी शोभनीय हो और आभूषण भी शोभनीय हों। क्योंकि वस्त्र और आभूषण से शरीर की शोभा नहीं बढ़ायी जाती, मन भी पावन होता है। जिन वस्त्रों को पहनने से मन दूषित होता हो, शरीर विकृत दिखाई देता हो वैसे वस्त्र व आभूषण नहीं पहनना चाहिये, पूर्ण वस्त्र पहनें। वस्त्र ऐसे पहनना चाहिये जिन्हें पहनकर के अपनी मर्यादा का उल्लंघन न हो, लज्जा नष्ट न हो या जिन वस्त्रों के पहनने से व्यक्ति स्वयं को निर्लज्ज न समझे। तो अच्छी भेषभूषा धारण करने से परिणाम निर्मल होते हैं। जब तक वस्त्रों को स्वीकार किया जाता है तब तक वस्त्रों की एक मर्यादा होती है यदि कोई यथाजात दिगम्बर संत बन गये तब तो दिशायें ही उसकी अम्बर हैं। दिशाओं को जब वे अम्बर बनाकर जीते हैं तब उनका स्वयं का भी मन निर्विकारी होता है और सामने वाला

दर्शक जब दर्शन करता है तो उसका मस्तक स्वयं झुक जाता है। यह उच्च कोटि का त्याग, सर्वोत्कृष्ट त्याग जिस त्याग की चरम सीमा पर वे पहुँच गये इससे बड़ा त्याग और क्या हो सकता है, उन्होंने सब छोड़ दिया तो वह एक अलग चीज हो गयी। वस्त्र जब तक व्यक्ति पहनता है तब तक सुव्यवस्थित, आर्योचित वस्त्र पहने तो वह भी उसकी साधना में सहायक हो सकते हैं।

आगे कहा–छटवां सूत्र–**'भव भीरूता'** व्यक्ति यदि संसार सागर से पार होना चाहता है तो संसार से डर जाये, भगवान्! ऐसा संसार मुझे नहीं चाहिये, मैं संसार में जन्म–मरण नहीं करना चाहता, उसे संसार से विरक्ति होना चाहिये। भव–भोगों से विरक्ति और इस शरीर से विरक्ति नहीं हुयी तो व्यक्ति संसार सागर से पार कैसे होगा। यदि विरक्ति का भाव उसके जीवन में है तो भव सागर से पार हो सकता है यदि विरक्त भाव नहीं है तो वह चाहे कितनी भी साधना करे उस साधना के फल स्वरूप कुछ वैभव प्राप्त कर सकता है, उसके फल से संसार की वस्तुयें प्राप्त कर सकता है, भोगों को प्राप्त कर सकता है किंतु भव का नाश नहीं कर सकता। भव नाश करने के लिये आवश्यक है भव–भोगों से विरक्ति और भोग भोगने वाले शरीर से विरक्ति। इनसे विरक्ति हो जाती है तो वह किंचित् भी साधना करता है तो वह साधना भवभ्रमण की भंजक होती है। भव–भोग और भोगों के भोक्ता इस शरीर से विरक्ति नहीं होती तो तपस्या करने के बावजूद भी वह पुण्य के फल से देवों का भोग भोगता है, कभी राजा, अधिराजा, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, चक्रवर्ती आदि के भोग भोगता है, नारायण–प्रतिनारायण होता है और भी नाना प्रकार के भोगों को भोगता है किंतु संसार का अंत नहीं कर पाता, इस संसार का अंत करने के लिये भव–भोग और भोगों का भोक्ता ये शरीर इन तीनों से विरक्ति होती है तब वह मोक्षमार्ग की ओर गमन करता है, भव भ्रमण का भंजन करने लगता है।

अगला सूत्र है **''भारती रति''** भारती कहते हैं जिन वाणी को, शारदा को उसके प्रति रति उसके प्रति रुचि हो। जिस व्यक्ति की जिनवाणी में रुचि है चाहे प्रथमानुयोग हो, करुणानुयोग हो, चरणानुयोग हो या द्रव्यानुयोग हो जिसमें उसकी रुचि है तो वह सम्यग्ज्ञान के माध्यम से अपनी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ होगा, किन्तु जिसकी रुचि भारती में नहीं है, ज्ञान के प्रति रुचि नहीं है वह अज्ञानता को श्रेष्ठ मानता है या अन्य गंदी पुस्तकें पढ़ता है तो उसके माध्यम से जीवन में पापों की वृद्धि होगी, उसका मन भोगों का दीवाना हो जायेगा, वह कषायों के जाल में कस जायेगा, भोगों की दलदल में फँस जायेगा किन्तु जिनवाणी/भारती के प्रति रति करने से उसकी रुचि अन्य स्थान से हटती चली जायेगी। स्वाध्याय एक ऐसी चीज है कि एक बार मन लग जाये फिर दूसरी ओर मन जाता ही नहीं, तो यह भी आत्मकल्याण के लिये परम आवश्यक है।

ज्ञान कैसा हो संशयमुक्त हो, विपर्यय से रहित हो और अनध्यवसाय से रहित हो इन दोषों से रहित वह सम्यग्ज्ञान की पिपासा भवभ्रमण का भंजन करने में समर्थ होती है।

अंतिम सूत्र भवभ्रमण के भंजन का वह है–''भट्टारकसेवा''– भट्टारक का अर्थ यहाँ पर 'पूज्य' है। जो अपने परमपूज्य हैं उनकी सेवा करने से शरीर निरोगी होता है, वज्रवृषभ नाराच संहनन आदि की प्राप्ति होती है, शरीर सुभग, शुभ होता है। दस प्रकार की वैय्यावृत्ति की जाती है आचार्य उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ मनोज्ञ साधु आदि दस भेद हैं तो उनकी वैय्यावृत्ति करने से व्यक्ति के मन में संयम के संस्कार आते हैं। यदि उससे पहले गृहस्थ जीवन की अपेक्षा से जो पूज्य हैं भट्टारक अर्थात् जो पूज्य हैं उसके लिये, चाहे वे उसके

माता–पिता–गुरुजन, दादा–दादी बड़े भाई आदि जिसकी भी सेवा करता है तो सेवा करने से कषायों का शमन होता है, सेवा करने से उसके जीवन में ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ता है, शरीर में शक्ति आती है, सेवा करने से शरीर में कांति, मन में शांति, यश कीर्ति की वृद्धि होती है। तो ऐसा करना भी आत्मकल्याण में परम उपकारी होता है, परम सहयोगी होता है। चार प्रकार का दान आहार–औषधि–शास्त्र अभयदान देकर भी सेवा करना सेवा है।

महानुभाव! यह आठ प्रकार के सूत्र भव भ्रमण का भंजन करने के लिये हैं। भगवद्भक्ति, भोजन (शुद्ध), भाषा (हित–मित–प्रिय), भद्रपरिणाम, भेषभूषा सुव्यवस्थित हो, भवभीरूता, भारती के प्रति रति, और भट्टारक सेवा यानि पूज्य पुरुषों की सेवा ये आठ सूत्र संसार वर्धन का नाश करने के लिये हैं। ये सूत्र आपके जीवन में अवतरित हों, आप अष्ट कर्मों से रहित होकर के आत्मा के अष्ट गुणों को प्राप्त कर सकें, ऐसी हम आपके प्रति मंगल भावना भाते हैं। इन्ही सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकम्।।